योगविद्या

वर्ष 7 अंक 12
दिसम्बर 2018
सदस्यता डाकखर्च – रु 100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2018

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 58 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर : श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

अन्दर के रंगीन फोटो : 1: श्री स्वामी सत्यानन्द की महासमाधि; 2-3: श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती; 4: स्वामी सत्यानन्द सरस्वती एवं स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

मैं ऐसा गुरु हूँ

मैं गुरु नहीं, मैं सदा जिज्ञासु साधक हूँ।
लेकिन ईश्वर ने मुझे गुरु बना डाला है,
साधकों ने मुझे गुरु बना डाला है।
मैं अपने शिष्यों को भी शीघ्र ही गुरु बना डालता हूँ,
मैं ऐसा गुरु हूँ।
महाराज, स्वामीजी, भगवन् और नारायण जैसे
आदरसूचक शब्दों से मैं उनका सम्मान करता हूँ।
मैं उनके साथ बराबर-जैसा व्यवहार करता हूँ,
मैं उन्हें ऊँचा आसन देता हूँ, मैं ऐसा गुरु हूँ।
मैं अपने जीवन से ही उन्हें शिक्षा देता हूँ,
मैं उन्हें महान् मानव-सेवक बनाता हूँ।
मैं उन्हें वक्ता, लेखक, स्वामी तथा योगी,
आध्यात्मिक संस्थाओं का संस्थापक, अध्यक्ष,
टाइपिस्ट, कवि, पत्रकार, प्रचारक, सुधारक,
योग-सम्राट्, आत्म-सम्राट्, कर्मयोगी-वीर,
भक्ति-भूषण तथा साधना-रत्न बना डालता हूँ
सत्य के सभी साधकों के लिए मैं ऐसा गुरु हूँ !

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर-811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित

मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद-121007, हरियाणा

स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 7 अंक 12 दिसम्बर 2018
(प्रकाशन का 56 वाँ वर्ष)

विषय सूची

इस विशेषांक में स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के सत्संगों और उनके प्रति समर्पित श्रद्धांजलियों का संग्रह है

4 आत्म विचार
9 जप का महत्त्व
12 योगनिद्रा और प्रत्याहार
18 चिदाकाश धारणा
26 सत्यम् वाणी
41 सत्यम् ज्योति
49 कल्पतरु की छाँव में
54 चक्रवर्ती सम्राट्

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

आत्म विचार

यदि आत्मा सत्-चित्-आनन्द है तो वह दु:ख, सन्ताप, चिन्ता, द्वन्द्व और अन्य शक्तियों का शिकार क्यों होती है? हम कहते हैं शिवोऽहम्, जिसका अर्थ है 'मैं शिव हूँ', 'मैं वह आनन्दस्वरूप आत्मा हूँ।' यह आनन्दमय आत्मा आखिर क्यों दु:ख और सुख का अनुभव करती है? इस प्रकार का प्रश्न बहुतेरे लोगों के मन में उठता है, जो आत्मा और उसके स्वरूप तथा स्वभाव की वास्तविक बात को समझना चाहते हैं। इसका उत्तर संक्षेप में बतलाता हूँ।

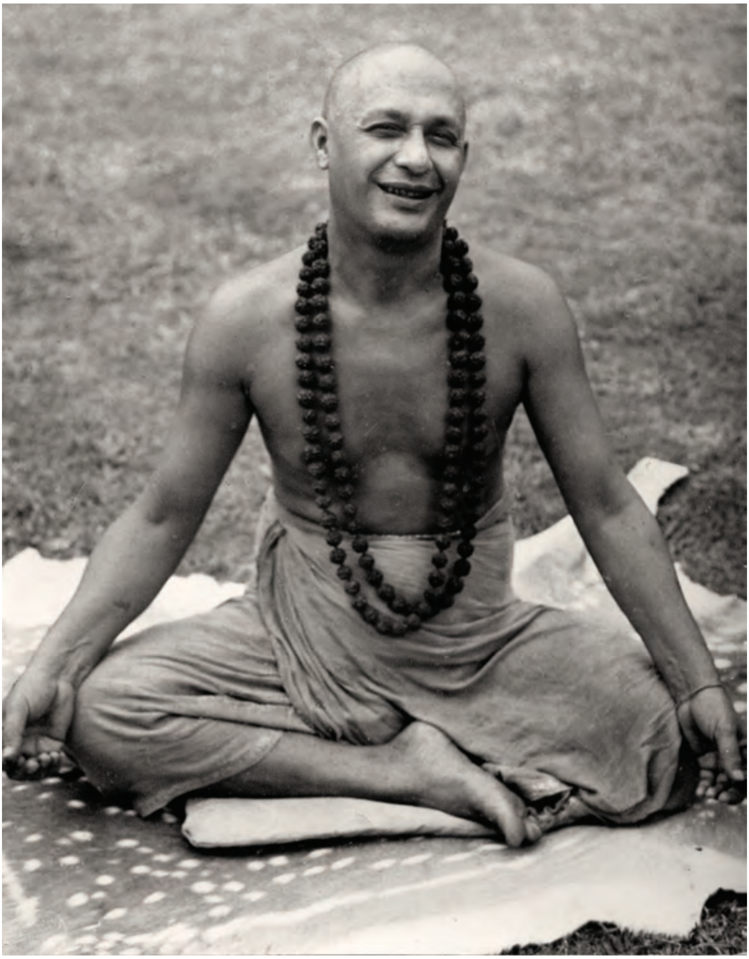

जिस प्रकार एक राजा स्वप्न में अपने आप को एक भिखारी के रूप में देखता है, किन्तु वास्तव में वह राजा है, उसी प्रकार आत्मा दु:ख और सुख की कल्पना कर लेती है। यही शास्त्रों का कहना है।

जब आत्मा पूर्ण आनन्द और ज्ञानमय है तो यह भ्रम क्यों? क्यों वह अपने आपको दूसरा समझ लेने की गलती करती है? मैं रात्रि में सोता हूँ और स्वप्न देखता हूँ कि मैं एक गृहस्थ हूँ, पर वास्तव में मैं संन्यासी हूँ। मैं सत्य को तभी जान पाता हूँ, जब मैं जग जाता हूँ। इसलिए मैं संन्यासी था, और अब भी संन्यासी हूँ। उसी प्रकार, वास्तव में मैं आत्मा हूँ, यद्यपि किसी प्रकार मैं अपने वास्तविक स्वरूप को भूल गया हूँ।

तब प्रश्न यह उठता है कि यह आत्मा भ्रम में क्यों? क्यों और कब इस भ्रम के आवरण ने आत्मा को ढँक लिया? कोई भी इसका उत्तर ठीक ढंग से नहीं दे सकता। वेद और शास्त्र इस प्रश्न पर चुप हैं। हम केवल यही कह सकते हैं कि महाप्रभु स्वयं एक अद्‌भुत खेल खेल रहे हैं। बिजली का बल्ब चमकता है और पंखा बिल्कुल स्थिर रहता है, यद्यपि दोनों ही विद्युत-घर की तारों के माध्यम से जुड़े रहते हैं। क्यों? इसलिए कि बल्ब का प्लग लगा हुआ है, किन्तु पंखे का अलग किया हुआ है। इसी प्रकार जब हम स्वयं को दुनिया और उसकी वस्तुओं से जोड़ लेते हैं तो हम उनसे प्रभावित होते हैं और परिणामस्वरूप हमें सुख और दु:ख का अनुभव होता है।

दु:ख की जड़, उसका कारण कहाँ है? हम उसे अनादि मान लेते हैं, किन्तु मेरे विचार में दु:ख की जड़ हमारे अन्दर ही है, दूर नहीं। इसकी जड़ हमारे मन और इन्द्रियों में है। यदि योग द्वारा हम अपने मन को नियन्त्रण में रखें, अथवा उसे प्रभु के पद्म-चरणों में समर्पित कर दें तो हमारे दु:ख समाप्त हो जाएँगे। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और प्राण के साथ पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पाँच कर्मेन्द्रियों के संयोग से हम भूतकाल का सुख और दु:ख के रूप में अनुभव करते हैं। जब जीवात्मा 19 तत्त्वों के साथ अपने को सम्बन्धित करती है, तब वह सुख और दु:ख का बोझा बन जाता है।

यह शरीर क्षेत्र है, इसमें एक क्षेत्रज्ञ रहता है। यह क्षेत्रज्ञ ही शिव, राम या सत्-चित्-आनन्द आत्मा है, जिसे तुम चाहे किसी नाम से पुकारो। जब यह क्षेत्रज्ञ अपने आपको क्षेत्र और उसके आवश्यक तत्त्वों के साथ एकरूप कर लेता है, तब यह क्षेत्र अर्थात् शरीर में होने वाली सभी घटनाओं का अनुभव करता है।

एक ताजा नारियल लो। उसके ऊपरी छिलके को तोड़ो। भीतर की गिरी भी टूट जाएगी। अब दूसरा सूखा हुआ नारियल लो और तोड़ो। ऊपरी छिलका टूट जाएगा, किन्तु भीतर की गिरी नहीं टूटेगी। क्यों? इसलिए कि गिरी ने अपने आपको ऊपरी छिलके से अलग कर दिया था। इसी प्रकार यदि हम अपनी आत्मा को शरीर से अलग समझ लें तो हम शरीर में होने वाली घटनाओं से अप्रभावित रहेंगे।

दूसरा उदाहरण लो। रमेश और सुरेश एक दूसरे से अपरिचित हैं। रमेश के परिवार में कोई मर जाता है। सुरेश उस मृत्यु से प्रभावित नहीं होगा, क्योंकि रमेश से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। दूसरे वर्ष सुरेश की लड़की से रमेश की शादी हो जाती है। इसके बाद भविष्य में सुरेश बराबर रमेश के परिवार की प्रत्येक घटना से निश्चय ही प्रभावित होगा, क्योंकि उसने उससे अपना सम्बन्ध जोड़ लिया है। इसी प्रकार आत्मा ने प्रकृति के साथ अपना सम्बन्ध अनादि काल से जोड़ रखा है।

तब हमें आत्मा को प्रकृति से अलग करने के लिए क्या करना चाहिए? जिस प्रकार दूध से मक्खन और धान से चावल निकाला जाता है, उसी प्रकार हमें साधना के द्वारा पुरुष तत्त्व और प्रकृति तत्त्व को अलग-अलग करना है। जिस प्रकार कच्चे माल से लोहे एवं इस्पात को भट्ठी में तपा कर अलग किया जाता है, उसी प्रकार हमें सत्य को असत्य से योगाग्नि द्वारा अलग करना होगा। जिस प्रकार हम कच्चे माल से इतर तत्त्व हटा कर सोना प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार हमें प्रकृति की तहों में छिपी हुई सुप्त आत्मा को खोजना तथा उसे प्रकृति से अलग करना है। इसका उपाय साधना ही है।

मान लो, तुम जंगल में जाते हो। एक शेर तुम्हारे सामने से तुम्हें बिना कुछ नुकसान पहुँचाए चला जाता है। वह चला गया है जरूर, इसमें कोई सन्देह नहीं, किन्तु तुम्हारे मन की हालत क्या होगी? भय, बिल्कुल भय से परिपूर्ण। तुम्हें काल्पनिक शेर भी सामने दिखता रहेगा। उसके दाँत और भयानक मुँह तुम्हारे मन के आगे बिल्कुल यथार्थ की भाँति प्रकट होते रहेंगे। यही चित्त-लय की अवस्था है। जब तुम आधी रात के समय श्मशान घाट में जाते हो तो तुम्हें ऐसा लगता है जैसे चारों ओर बहुत-से लोग हैं, जैसे बहुत-सी आवाजें बहुत दूर से आ रही हैं, और जैसे कोई मृतात्मा सामने आ गई है। ऐसे भयावह स्थान में मन में बहुत जल्दी विश्वास एवं भय का स्थान बन जाता है, और इसीलिए कोई-न-कोई आकृति बिल्कुल स्पष्ट दिखने लगती है।

किसी युवा-स्त्री का पति मर गया, किन्तु तब भी उसे सदा यही अनुभव होता था कि वह उसके साथ है और वह उसे खाना खिलाती थी। उसके पुत्रों ने कहा कि वह स्वयं दो व्यक्तियों का खाना खा जाती थी। अब वह सारी बातें समझ गई है। यह मन की तन्मय अवस्था का उदाहरण है, जब मन किसी एक में लीन हो जाता है। जब तक हम अपने चित्त को लीन नहीं करेंगे, तब तक प्रकृति और पुरुष एक-दूसरे से अलग नहीं होंगे। हंस नीर और क्षीर को अलग करने के लिए प्रसिद्ध है। यह श्वेत पक्षी जल में रहता है। इसका सबसे प्रिय निवास-स्थान मानसरोवर अर्थात् मन की झील है, जो कैलास के निकट स्थित है। मैंने उस पक्षी को देखा है। मैं उसके विषय में पूर्ण रूप से जानता हूँ। मैं 'हंस' को ही नहीं, बल्कि 'परमहंस' को भी जानता हूँ, जो नीर से क्षीर या पदार्थ से चेतना को अलग करने की कला में पारंगत है।

ईशावास्योपनिषद् में हम पढ़ते हैं कि सत्य का मुँह सुवर्ण के ढक्कन से ढका हुआ है। सचमुच यह आनन्दमय आत्मा तीन पर्तों से आवृत्त है। हमें इन आवरणों को हटाना है। तीन परदे तथा सात द्वार हैं। तीन आवरणों तथा सात द्वारों के पीछे आत्मा अथवा पुरुष का क्षेत्र है, जहाँ केवल अनन्त आनन्द है। जब तक हम तीन पर्दों, सात द्वारों और आन्तरिक पुरुष को नहीं जानेंगे, और जब तक हम यह नहीं जान लेंगे कि हमारे अन्दर महान् शक्ति है, तब तक हमें दु:ख और शोक से मुक्ति नहीं मिलेगी।

यह आत्मा वास्तव में निराकार है। इसका ही नाम शिव, राम, आत्मा इत्यादि है। यह आत्मा प्रकृति की तहों के अन्दर रमी है। इस आत्मा के चारों ओर करोड़ों मील तक चेतना फैली हुई है, जिसमें नारायण सो रहे हैं। जिसने साधना के द्वारा सत्यलोक में प्रवेश कर लिया है और अपनी आत्मा को उच्च गगन में ऊपर उठा लिया है, वह भगवान विष्णु को क्षीर-सागर में देखता और जानता है। वे अनन्त सागर में शयन करते हैं।

मैं तुम्हें यह बताना चाहता हूँ कि यह शरीर जितना तुम देखते हो, उतना ही नहीं है। दृष्टि और अनुभव की सीमा के परे हमने इसमें अनन्त शक्ति को देखा है। शरीर के आवरण के भीतर दिव्य-चेतना की परम शक्तियाँ छिपी हुई हैं। सात द्वारों के पीछे चेतना छिपी हुई है। आठवें द्वार पर तुम्हें उस आत्मा को पाना है। सब द्वारों को एक-एक करके खोलते जाओ। लो, वह वहाँ है। आकाश में ऊपर उठो। उन सात सीढ़ियों पर चढ़ो। सातवीं के पार एक मन्दिर है, जो प्रकाश से भरपूर एवं अनन्त सूर्यों के प्रकाश के समान है। वहाँ एक पवित्र पक्षी है, जो सहस्र दलों वाले शान्त और सुन्दर कमल के ऊपर बैठा हुआ है। और मुझसे सुनो कि वह मन्दिर तुम्हारे अन्दर है और वह पक्षी भी उसी मन्दिर के अन्दर है।

हमारा महान् बृहदारण्यक उपनिषद् कहता है–'वह जो मेरे अन्दर निवास करता है, जो मेरा तत्त्व है, किन्तु जिसे मैं जानता नहीं हूँ, और जो अन्दर से मुझे संचालित करता है, वही आत्मा है–अन्तर का शासक और अमर

आत्मा।' इससे यह सिद्ध होता है कि आत्मा शरीर के अन्दर है। उस पुरुष को कैसे जाना जाए? उसके पास कैसे पहुँचा जाए? मन के नियन्त्रण के द्वारा। फिर, मन को कैसे नियन्त्रित किया जाए? इसको वश में लाने के लिए अनेक तरीके हैं। मैं तुम्हें सर्वोत्तम तथा सबसे सरल तरीका बतलाता हूँ।

जब हमारा बहुमूल्य गहनों का बक्स खो जाता है, तब हम अन्तर्मुख हो जाते हैं। जब कोई बहुत बड़ी समस्या हमें घेरती है तो हमें अपने चारों ओर के वातावरण की खबर नहीं रहती। बहुत-से मनुष्य सामने से चले जाते हैं, पर हम उन्हें नहीं देखते। यह अन्तर्मुख अवस्था उसको प्राप्त हो सकती है, जो इसके तरीके को जानता है। जब कोई स्त्री सिलाई का कार्य करती है तो वह साथ-साथ बच्चे के लिए लोरी भी गाती है। उसके हाथ अपने आप चलते भी रहते हैं, और साथ-साथ वह अपनी सहेली से घर और परिवार के विषय में बातचीत भी करती जाती है। इससे यह पता चलता है कि मन के अन्तर्मुख होने पर भी बाह्य कार्य चलते रह सकते हैं।

अन्तर्मुख भावना के लिए तुम्हें एकाग्रता और ध्यान का तरीका जानना पड़ेगा। एक बार तुम उस तरीके को जान जाओ, तो तुम बहुत आसानी से उसका अभ्यास कर सकते हो। धीरे-धीरे मन नियन्त्रण में आ जाएगा। ध्यान से पुरुष और प्रकृति को अलग करने की क्रिया सम्पन्न होती है। यह ऐसे!

जब हम राम के चित्र पर ध्यान की पूर्णता प्राप्त करते हैं, तब हम उसे बिल्कुल वास्तविक रूप में अपने सामने देख सकते हैं। निराकार साकार बन जाता है। प्रकृति अर्थात् पदार्थ से चेतना अलग हो जाती है। इस अवस्था में मन का अस्तित्व नहीं रह जाता। जब तुम राम पर ध्यान करते हो तो वास्तव में तुम अपनी आत्मा पर ध्यान करते हो, जो कि अपने को तुम्हारे प्रिय रूप के आकार में प्रकट करती है। यही तुम्हारी आत्मा है, जो तुम्हारे पास सात द्वारों को पार करके आती है। यही मन्दिर का हंस है, जिसे तुम, जिस रूप पर ध्यान करते हो, उसी रूप में देखते हो।

जब तुम समाधि में रहते हो तो ये सात द्वार खुल जाते हैं, आवरण हट जाते हैं। यही कारण है कि मैं तुम्हें ध्यान करने के लिए कहता हूँ। जैसे ही चित्त का लय होता है और ध्यान गहरा तथा प्रगतिशील होता है वैसे ही आत्मा व्यक्त होना प्रारम्भ कर देती है। लो, प्रकाश स्पष्ट दिख रहा है। वही आत्मा, जो तुम्हारे शरीर और मस्तिष्क से कार्य कराती है, साकार होकर तुम्हारे सामने आती है।

निराकार आत्मा के प्रकटीकरण के लिए सर्वोत्तम तरीका भक्ति है। यह आत्मा, महान् शक्ति, जो हमारे अन्दर सोई हुई है, सात्त्विक, राजसिक और तामसिक रूपों में अपने को प्रकट करती है। सात्त्विक वृत्तियों में प्रकट होने से शान्ति, आनन्द और मोक्ष की प्राप्ति होती है, जबकि राजसिक और तामसिक वृत्तियाँ साधक के ऊपर प्रतिक्रिया-स्वरूप दु:ख, कष्ट और कभी-कभी मृत्यु तक भी ले आती हैं।

जप का महत्त्व

साधना में जप के दो महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं, एक है लिखित जप और दूसरा है मानसिक जप। जब मन्त्र को लिखकर जपा जाता है, उसको लिखित जप कहते हैं। लिखित जप की कॉपियों को घर में रखते हैं। उससे अनेकों प्रकार की दैवी बाधायें दूर होती हैं और घर का वातावरण सुधरता है। जब कोई मकान बनता है तो लिखित जप की कॉपियाँ या कोई यंत्र या भगवान की मूर्ति वगैरह को एक बक्से या टोकरी में भरकर उस मकान की बुनियाद में डाल देते हैं। कोई उपाय न हो तो लिखित जप की कॉपियों को गुरु जी के पास भेजा जाता है। या कभी-कभी जब हरिद्वार या काशी जैसे तीर्थों का पर्यटन करने जाओ तो उन कॉपियों को ले जाओ और गंगा नदी की धारा में ससम्मान प्रवाहित कर सकते हो। मगर देखना, कहीं ये मन्त्र की कॉपियाँ किसी पकौड़ी की दुकान में न बिक जाएँ। कभी ऐसा होता है कि उधर से समोसा खरीदा और कागज में लिखा है–ॐ नमः शिवाय! ये लिखित जप की कॉपियाँ बहुत प्रभावशाली होती हैं और इसके अनेकों उदाहरण और महिमाएँ लिखी गई हैं।

साधना में जप का दूसरा पक्ष है मानसिक। आप मन्त्र का माला से जप कर सकते हैं, श्वास के साथ कर सकते हैं और ऊँगलियों पर भी जप कर सकते हैं। जिसको जैसा गुरु ने बतलाया हो उसको वैसा ही जप करना चाहिये। मन्त्र का

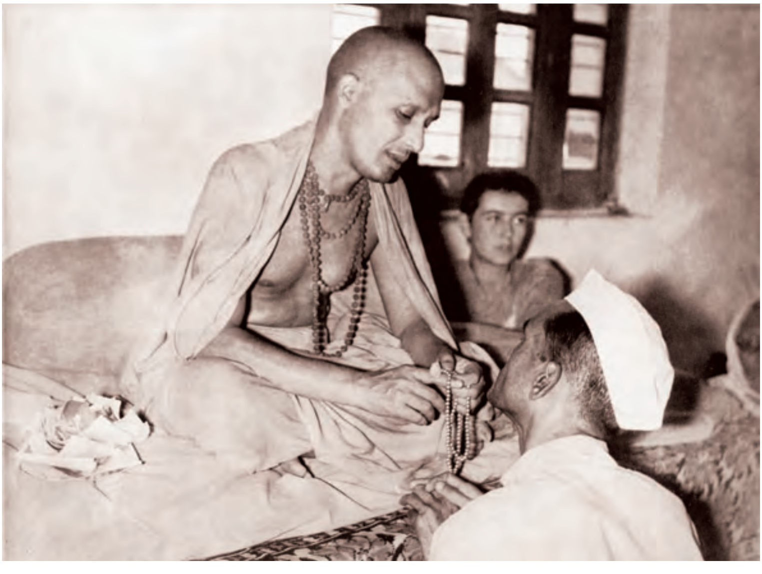

जप और चित्त की एकाग्रता, दोनों अलग-अलग विषय हैं। अपने मन्त्र का जप करते-करते उसको चाहो तो उजागर कर सकते हो, मगर मन्त्र जपते-जपते चित्त को एकाग्र करना कोई जरूरी नहीं। अगर मन्त्र जपते समय तुम्हारा मन बन्दर की तरह बहुत उछल-कूद मचाता है, इसका यह मतलब नहीं कि तुम्हारा जपना निष्फल हुआ। यदि यह भावना तुम्हारे अन्दर है तो गलत है, इसको निकाल दो। जो भी मन्त्र अपने को गुरु जी से मिला है वह मन्त्र एकाग्रता का हेतु नहीं है। भले ही मन्त्र को जपते-जपते तुम अपने मन को एकाग्र करने की कोशिश करो, उसमें कोई हर्ज नहीं, परन्तु मन्त्र हमने तुम्हें एकाग्रता के लिये नहीं दिया है। गुरु से जो मन्त्र मिलता है वह एकाग्रता का नहीं, चित्त की पवित्रता का हेतु है। चित्त पवित्र हुआ, कैसे पता चलेगा? अभी पता नहीं चलेगा। जब आगे तुम्हारी योग साधना बहुत ऊँची पहुँचेगी तब तुम्हें कुछ-कुछ दिखलाई देगा। उस समय यदि तुम्हारा चित्त पवित्र हुआ तो तुम्हें अच्छी-अच्छी चीज दिखलाई देगी, और यदि चित्त पवित्र नहीं हुआ तो बुरी चीज दिखलाई देगी। जब कुण्डलिनी की जागृति होती है तो उस वक्त शुद्ध चित्त वालों को सुखद और आकर्षक सिनेमा दिखाई देता है, और अशुद्ध व नकारात्मक चित्त वालों को बड़ा डरावना सिनेमा दिखाई देता है।

कुण्डलिनी योग में कुण्डलिनी की जागृति के अनुभवों को ठीक रखने के लिये साधना के शुरू में गुरु से मंत्र लिया जाता है। उस मंत्र को जपते-जपते हमारे अन्दर में चित्त-शुद्धि होती है। कैसे चित्त-शुद्धि होती है, दिखाई तो नहीं देता है। जिस प्रकार एक इन्जेक्शन देने से शरीर के अन्दर में रोग पैदा करने वाले कीटाणु नष्ट होते हैं, लेकिन वे कीटाणु दिखते नहीं हैं, उसी प्रकार मन्त्र भी मन के अन्दर संस्कार के कीटाणुओं को धीरे-धीरे नष्ट करता है।

इसलिये जो भी मन्त्र गुरु से मिला है उस मन्त्र को नियमित जपते जाना। अगर चित्त एकाग्र हुआ तो भी ठीक, चंचल चित्त हुआ तो भी ठीक। पवित्र विचारों की पृष्ठभूमि में हुआ तो भी ठीक और अपवित्र विचारों की पृष्ठभूमि में हुआ तो भी ठीक। यह पक्की बात बोल रहा हूँ। लोग रोज यही कहते हैं, 'स्वामीजी, मन बड़ा चंचल रहता है। जब जप करने बैठते हैं तभी मन इधर-उधर भागता रहता है, बाकी समय बड़ा ठीक रहता है।' अब देखो, हम लोग यहाँ बैठे हुए हैं, चर्चा कर रहे हैं और वहाँ सड़क पर कितनी मोटर-गाड़ियाँ जा रही हैं। हमें उससे क्या मतलब है? हम उन ट्रकों को रोकें या यहाँ कीर्तन-सत्संग करें? दोनों एक साथ जमेगा नहीं, क्योंकि ट्रक का अपना एक नियम है। मान लीजिये, अगल-बगल में शादी हो रही है, नाच-गाना चल रहा है, अब यह सोचें कि वह बन्द हो जाए तब जाकर हम कीर्तन करेंगे, तब तो रात भर इन्तजार करना पड़ेगा और वह इन्तजार का समय व्यर्थ होगा।

एक आदमी समुद्र के किनारे बैठा हुआ था। उसे एक दोस्त ने बोला कि स्नान करो न। वह बोला कि यह लहर जब वापस जायेगी तब स्नान कर लेंगे। जब तक वह

लहर वापस जाती है तो दूसरी आ जाती है। समुद्र के किनारे लहरें थमती ही नहीं। उसी प्रकार मन की चंचलता को कोई रोक नहीं सकता। बगल की शादी के बाजे को रोक नहीं सकते, इसी बीच में तुमको जो करना है वह करते चलो। चित्त के चंचल रहते हुए भी, मन के भटकने पर भी अपने मन्त्र का दो, तीन, चार, जितना माला जपते हो, उसको आँख बंद करके करो या आँख खोल करके करो, माला से करो या बिना माला के करो, मुँह से बोलकर करो या लिखकर करो, लेकिन अपने निश्चित नियम से उसको करना ही है। इसलिए यह प्रश्न और विचार अपने दिमाग से निकाल दो कि मैं जब जप करता हूँ तो मेरा मन बहुत भटकता है। किसी-किसी से मैंने पूछा कि कुछ जप आदि करते हो, तो उसने कहा, 'छोड़ दिया स्वामीजी, मन ही तो नहीं लगता।' बताओ तो, क्या तुमने वह हर चीज छोड़ दी जिसमें तुम्हारा मन नहीं लगता या केवल मन्त्र को छोड़ दिया? जब तुम पूड़ी-कचौड़ी खाते हो तो उस समय कहाँ-कहाँ की बात सोचते हो? फिर भी खाते ही रहते हो, थोड़े ही छोड़ते हो। उसको भी छोड़ दो तो जानें। आदमी अपनी सुविधा के मुताबिक चीज बनाता है। हम तो जानते हैं सबको, खाना खाते रहते हैं और ऑफिस के बारे में भी सोचते रहते हैं। टेलीफोन आता है तो आधा खाना खाकर झूठे मुँह से टेलीफोन के पास जाते हैं, 'हैलो, साहब' बोलते हैं। खाना खाते समय चित्त भटकता है तब भी तुमने खाना नहीं छोड़ा, रात को सोते समय चित्त भटकता है तो भी तुमने सोना नहीं छोड़ा, केवल जप छोड़ दिया!

इसका मतलब है कि माया तुम्हारे मन में बहुत प्रबल है। कोई भी बहाना माया है। तुम्हारे मन में माया एक षड्यंत्र रचती है–किसी भी तरह यह जीव ईश्वर के पास नहीं जाए तो बहुत अच्छा है ताकि इस जीव को जितने दिन हो सके उतना शोषण करें, परेशान करें। इस संदर्भ में रामचरितमानस में भी निर्दिष्ट किया गया है कि, 'भाव कुभाव अनख आलसहूँ, नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।' अरे, बीज को उल्टा बोओ या सुल्टा, वह अपना काम करेगा ही। उसी तरह तुम अपने मन्त्र को चाहे चंचल अवस्था में जपो या एकाग्र अवस्था में, वह चित्त की गहराई में जाकर अपना काम जरूर करेगा।

योगनिद्रा और प्रत्याहार

योगनिद्रा और प्रत्याहार को समझने के लिए तीन चीजों को समझना आवश्यक है। योगनिद्रा क्या है? योगनिद्रा का अभ्यास करते समय मनुष्य चेतना की क्या प्रतिक्रिया होती है? और योगनिद्रा के क्रम में हमें किन अवस्थाओं की अनुभूति होती है?

योग में मनुष्य चेतना के विकास और व्यक्तित्व जागरण हेतु कुछ मुख्य अंगों की चर्चा की जाती है। इन अंगों को हम योग की अष्टांग-पद्धति के रूप में जानते हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। यम और नियम हमारे बाह्य जीवन को, पारिवारिक वातावरण को तथा मानसिक विचारधाराओं एवं व्यवहार को संयत और संतुलित बनाने में सहयोगी होते हैं। आसन और प्राणायाम शरीर के अंगों की रक्षा करते हैं, उन्हें स्वास्थ्य प्रदान करते हैं, उनमें स्फूर्ति और शक्ति का संचार करते हैं, शरीर में प्राण शक्ति के संचार में अगर कहीं पर रुकावट हो, त्रुटि हो, धीमापन हो, तो उसे दूर करते हैं। प्रत्याहार और धारणा का सम्बन्ध मनुष्य के मनोविज्ञान से रहता है, मन की अनुभूति और चेतना के अनुभव से रहता है। ध्यान और समाधि का सम्बन्ध मनुष्य की आध्यात्मिक चेतना से रहता है। सामान्य रूप से प्रत्याहार और धारणा योग के दो ऐसे अंग हैं, जिनके बारे में हमें अधिक जानकारी नहीं रहती, क्योंकि अधिकांशत: देखा जाता है कि आसन-प्राणायाम के बाद लोग सीधा ध्यान के अभ्यासों में छलांग लगाते हैं।

प्रत्याहार योग की एक बहुत आवश्यक प्रक्रिया है, जिसमें इन्द्रिय-निग्रह की स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है, अपनी बहिर्मुखी वृत्तियों को शनै:-शनै: अन्तर्मुखी और केन्द्रित किया जा सकता है। इसके द्वारा हम विक्षिप्त मानसिक अवस्थाओं, विचारों, भावनाओं, इच्छाओं और वासनाओं को शान्त करके, आन्तरिक नकारात्मक प्रवृत्तियों का दमन करके स्वयं को एक ध्यान-बिन्दु में केन्द्रित कर सकते हैं।

प्रत्याहार के दो अर्थ होते हैं। एक का सम्बन्ध 'प्रत्यय' से है। योग की भाषा में प्रत्यय का अर्थ होता है अनुभव का एक केन्द्र या स्मृति का एक अंश जो अनेक प्रकार के कर्मों, प्रतिक्रियाओं, विचारों एवं व्यवहार के विभिन्न रूपों को जन्म दे। ये प्रत्यय ही हमारे जीवन की गाड़ी को हमेशा चलाते रहते हैं। प्रत्याहार का दूसरा अर्थ होता है, बहिर्मुखी इन्द्रियों को अन्तर्मुखी बनाना। जिस प्रकार से एक कछुआ अपने अंगों को समेटकर अपने कवच के भीतर खींच लेता है, उसी प्रकार से तात्कालिक स्थिति में हमारी जो विक्षिप्त अवस्थाएँ हैं, उन्हें समेट कर हम एक बिन्दु में केन्द्रित कर दें।

स्वयं को जानने के लिए, अपनी आन्तरिक प्रतिक्रियाओं को जानने के लिए प्रत्याहार के अन्तर्गत अनेक विधियों का वर्णन किया गया है, जिनमें एक है योगनिद्रा है, दूसरी है अन्तर्मौन। इनके अलावा और भी अनेक अभ्यास हैं, जैसे अजपा जप। योगनिद्रा को प्रत्याहार की प्रारंभिक अवस्था के रूप में देखा गया है, क्योंकि यह शिथिलीकरण की एक क्रिया भी है। शिथिलीकरण में भी एक मनोविज्ञान निहित है। शिथिल होने का मतलब पैरों को फैला कर सो जाना नहीं होता। मनोविज्ञान मानता है, और हो सकता है आप लोग भी इस बात को मानें कि निद्रा में विश्राम की स्थिति नहीं रहती। निद्रा की अवस्था में भी तनाव की स्थिति रहती है। निद्रा की स्थिति में जब हम स्वप्नों को देखते हैं, उनके कारण भी तनाव उत्पन्न होते हैं। विचित्र प्रकार के क्लेश और दु:ख उत्पन्न होते हैं, भय, हर्ष, विषाद आदि की उत्पत्ति होती है। चाहे भय हो या हर्ष हो या विषाद हो या तनाव हो, निद्रा की स्थिति में भी ये मन के भीतर एक तनावपूर्ण अनुभव को जन्म देते हैं। भय में तनाव होता है न? अगर आप सपना देखें कि कोई आदमी आपको मारने के लिए आ रहा है, और आप दौड़ रहे हैं, तो स्वप्न में दौड़ते समय आपको भय की अनुभूति हो रही है, जिसके कारण शरीर में तनाव भी उत्पन्न हो रहा है, कंपन भी हो रहा है, आपको घबराहट और चिन्ता भी हो रही है।

हमारे जीवन में इस प्रकार की अनेक प्रक्रियाएँ होती हैं, जिनके कारण यौगिक और आधुनिक मनोविज्ञान कहता है कि निद्रा की स्थिति भी विश्राम की स्थिति नहीं है। जब आप रात को बिस्तर पर सोने जाते हैं तो अकेले सोते हैं क्या? बहुत बार तो हम आधा कार्यालय अपने साथ बिस्तर में ले जाते हैं। उसके बारे में विचार, चिन्ता होती रहती है। बहुत बार हम पारिवारिक समस्याओं के साथ बिस्तर में सोते हैं। उन्हीं के बारे में सोचते-सोचते कभी नींद आ जाती है, कभी रात भर जगे रह जाते हैं। इस प्रकार की स्थिति तो हमेशा आती रहती है। कभी किसी के साथ मनमुटाव तो कभी किसी के साथ लड़ाई-झगड़ा, इस प्रकार पहले से जो एक तनाव की स्थिति रहती है उसी स्थिति में हम निद्रा के लिए जाते हैं। और हमें पूर्ण रूप से विश्राम प्राप्त नहीं होता है। इस कारण उठने के पश्चात् भी आलस्य का अनुभव होता रहता है, जम्हाई आती रहती है, शक्ति की कमी महसूस होती है, और सोचते हैं कि कितना अच्छा होता अगर दो-तीन घण्टे और सो जायें। इसके पीछे एक ही कारण है कि आज तक हम लोग स्वयं को शिक्षा नहीं दे पाए हैं कि कब मन की तनावपूर्ण अवस्था से सम्बन्ध-विच्छेद करना है और कब शान्त अवस्था से सम्बन्ध जोड़ना है।

यह मानसिक अनुशासनहीनता की स्थिति है। मानसिक अनुशासन को प्राप्त करना आज तक हमने नहीं सीखा है, क्योंकि किसी ने हमें सिखलाया ही नहीं है। कोई जानता ही नहीं है। अत: विश्राम को प्राप्त करने के लिए विषयों और इन्द्रियों से मन का सम्बन्ध-विच्छेद करना आवश्यक है। योगनिद्रा में यहीं से शिक्षा आरम्भ

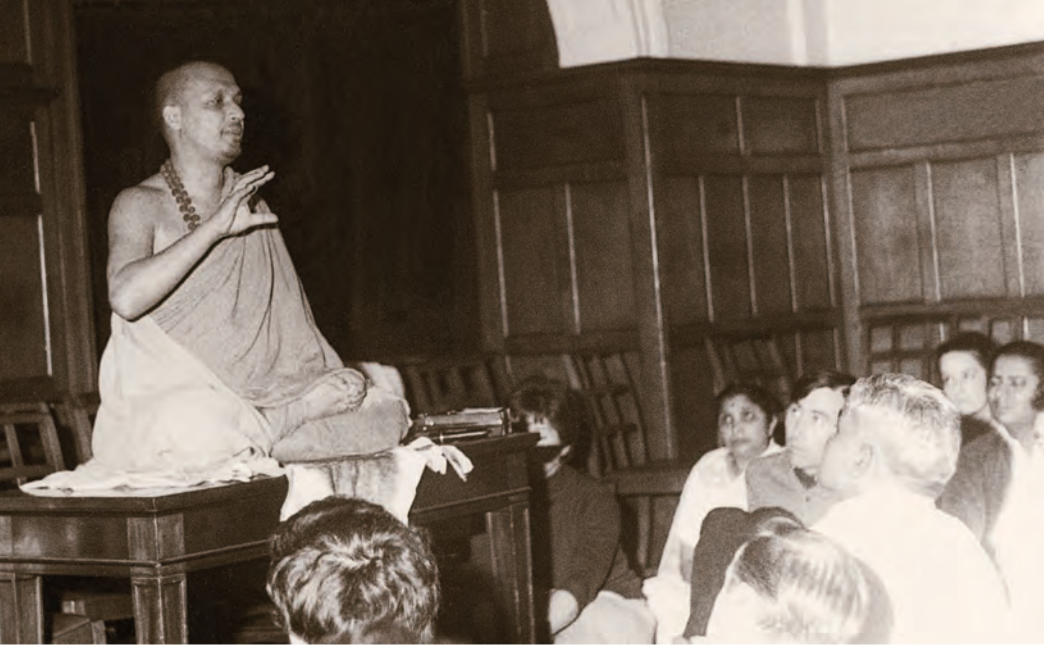

होती है कि धीरे-धीरे अपनी शारीरिक और मानसिक अवस्थाओं को पहचान कर, शारीरिक तनावों के प्रति जागरूक हो, मन को एक बिन्दु में केन्द्रित करके हम विश्राम की स्थिति को प्राप्त करें। उस विश्राम की स्थिति में एक नए, सकारात्मक और सृजनात्मक व्यक्तित्व का विकास होता है।

योगनिद्रा की अनेक विधियाँ हैं। हम लोग योग में मुख्य रूप से योगनिद्रा के अस्सी अभ्यासों की चर्चा करते हैं। ये अभ्यास शनैः शनैः मनुष्य की सजगता को चेतन से अवचेतन और अवचेतन से अचेतन स्तर तक ले जाते हैं और इन सभी अवस्थाओं से तनाव को हटाकर एकाग्रता और विश्रान्ति का अनुभव कराते हैं। लेकिन सामान्य रूप से हम लोग मात्र पाँच या छः विधियों की शिक्षा प्रदान करते हैं। योगनिद्रा नामक पुस्तक में भी, जिसमें इसके सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्षों की चर्चा की गई है, मुख्यतः पाँच अभ्यासों की चर्चा की गई है, ज्यादा नहीं, क्योंकि हम लोग सामान्य जीवन में इनसे आगे बढ़ नहीं पाते। हर एक अभ्यास मन के एक अनुभव को जाग्रत करता है, मन के एक अनुभव का विस्फोट करता है।

अब दूसरा प्रश्न उठता है, 'मनुष्य के मन को कैसे समझें?' जाग्रत अवस्था में हमें बहुत प्रकार के अनुभव मिलते हैं जो हमारे विचार, व्यवहार और कर्म को प्रभावित करते हैं। कल का कोई अनुभव, चाहे वह सुखद रहे या दुःखद, आज आपके विचार, व्यवहार और कर्म को प्रभावित करता है। कल अगर किसी से लड़ाई हुई होगी तो आज भी वह आपके विचार और व्यवहार को प्रभावित करेगी। कल अगर किसी के साथ एक सुखद विषय पर चर्चा हुई होगी, तो वह

चर्चा आज भी आपके विचार और व्यवहार को प्रभावित करेगी। यह तो रोज होता है हमारे जीवन में। अत: जाग्रत अवस्था में हमें जो अनुभूतियाँ होती हैं वे हमारे व्यवहार के लिए एक आधार बन जाती हैं। अवचेतन और अचेतन में भी इनका असर दिखलाई देता है। मानव मनोविज्ञान को समझना बहुत कठिन है, क्योंकि परिस्थितियाँ और व्यवहार प्रतिक्षण बदलते रहते हैं। जब हम परिस्थितियों से प्रभावित होते हैं तो हमारे व्यक्तित्व की कुछ प्रतिक्रियाएँ होती हैं। इन्हीं प्रतिक्रियाओं के कारण सुख-दु:ख, लाभ-हानि, अच्छे-बुरे का ज्ञान होता है, और तदनुसार कर्म होते हैं।

हमलोगों का मन हमेशा धनुष की तनी हुई प्रत्यंचा के सदृश रहता है, जो सुखद परिस्थिति में भी तनी रहती है और दु:खद में भी। इस तनी हुई अवस्था में कभी विश्रांति की अनुभूति नहीं होती। योगनिद्रा के द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि परिस्थिति के प्रभाव से हमारे मन में जो तनी हुई प्रत्यंचा है, उसके प्रति सजग होकर हम उसे ढीला कर दें।

अब तीसरी चीज, योगनिद्रा में अनुभव। हमने पूर्व में आपको बतलाया कि योगनिद्रा के अस्सी अभ्यास हैं जिनमें से पाँच ही सिखलाये जाते हैं। इसके पीछे एक कारण है। मनुष्य की प्रवृत्ति चंचल और बहिर्मुखी होती है। और जब कभी हम एकाग्र होते हैं, या ऐसे वातावरण में रहते हैं जहाँ ज्यादा चंचलता का आभास न हो, तो अन्तर्मुखी होने के कारण, बाह्य वृत्तियों के शान्त होने के कारण स्वाभाविक रूप से तन्द्रा की स्थिति आने लगती है। आप किसी सत्संग या भागवत कथा या रामायण कथा में जाएँगे, पन्द्रह-बीस मिनट के बाद नींद आने लगेगी। किन्तु किसी क्लब या पार्टी में जाएँगे तो आधी रात तक एकदम जमे हुए रहेंगे। ये दो विपरीत परिस्थितियाँ हैं–एक में मन की गति शिथिल और शान्त है, दूसरी में मन की गति तीव्र है, बहिर्मुखी है। जहाँ गति तीव्र है, वहाँ एक से दूसरे, दूसरे से तीसरे और तीसरे से चौथे अनुभवों के पीछे जाने के कारण, विषय भोग के पीछे जाने के कारण मन सजग रहता है और ऊबता नहीं। जहाँ मन शान्त हुआ, ऊब लगने लगती है, आँखें बन्द हो जाती हैं। यह तो मन का स्वाभाविक रूप है। इसी में आपको स्वयं पर नियंत्रण रखना है। योगनिद्रा में लेटते ही खर्राटे शुरू हो जाते हैं। या बहुत बार होता है कि हम एकदम सजग रहते हैं, सोते नहीं है, लेकिन कहीं सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है और जब हम फिर से सजग होते हैं तो देखते हैं कि अरे, अभी हम शरीर की दाहिनी तरफ घूम रहे थे और अब यहाँ कल्पना कर रहे हैं कि सूर्य देखो, चन्द्रमा देखो, पहाड़ देखो। यह अन्तराल कैसे आ गया?

इस प्रकार के विभिन्न अनुभव होते हैं। ये अनुभव तब होते हैं जब मन शान्त होता है, क्योंकि जिन इन्द्रियों के साथ मन का सम्पर्क हमेशा रहता है, चाहे वह

कर्मेन्द्रिय हो, चाहे ज्ञानेन्द्रिय हो, चाहे बुद्धि हो, या चित्त हो, उनके साथ अगर सम्बन्ध-विच्छेद हो जाए तो तन्द्रा की अवस्था अवश्य आएगी। बहुत बार आपने देखा होगा कि जब योगनिद्रा करने जाते हैं तो उसके पूर्व एक प्रकार का विचार या शारीरिक अनुभव, चाहे गर्मी का हो या ठण्ढ का हो या पेट में तनाव हो गया हो या पेट खाली हो, कुछ विशेष परिस्थिति हमेशा रहती है। उस विशेष परिस्थिति से अपने को हटाने और योगनिद्रा के अभ्यास से अपने को जोड़ने में लोगों को दिक्कत होती है। इसलिए मन के भीतर से उस विशेष अनुभव को दूर करने के लिए योगनिद्रा में एक क्रम को अपनाया गया है कि पहले शरीर का ख्याल होना चाहिए, फिर बाह्य आवाजों का ख्याल होना चाहिए, फिर शरीर में चारों तरफ अपनी चेतना को घुमाना चाहिए, फिर श्वास का ख्याल होना चाहिए, फिर कुछ दृश्यों को देखने का प्रयास करना चाहिए।

यह तो योगनिद्रा की मात्र प्रारंभिक अवस्था है जिसमें हम मन और इन्द्रियों के सम्बन्ध को तोड़ने का प्रयास कर रहे हैं। योगनिद्रा की शुरुआत यहाँ भी नहीं होती। वास्तविक योगनिद्रा की शुरुआत बहुत बाद में होती है, जिसका एक लक्षण है। स्वप्न की अवस्था में अगर आप जानें कि मैं सोच रहा हूँ या मैं स्वप्न देख रहा हूँ तो आप जान लेना कि अब हम योगनिद्रा का अभ्यास करने के लिए तैयार हो रहे हैं। इस तैयारी में अनेक वर्ष भी लग सकते हैं। यह स्थिति स्वत: उत्पन्न होती है।

बहुत बार ऐसा होता है कि स्वप्न देखते समय यह मालूम रहता है कि हम स्वप्न देख रहे हैं। बहुत बार निद्रा के समय यह मालूम रहता है कि मैं सो रहा हूँ। शरीर लेटा है, रात के एक बजे हैं। आँखें बन्द हैं, शरीर सो रहा है, लेकिन मैं भीतर में जगा हूँ। जब यह स्थिति आ जाए तो योगनिद्रा की शुरुआत होती है। पहले सभी प्रकार की प्रक्रियाएँ योगनिद्रा की प्रारंभिक अवस्था के रूप में ही देखी जा सकती हैं। लेकिन अगर इन आरंभिक अभ्यासों को हम सही प्रकार से कर सकें, तो अनुभव करेंगे कि कुछ ही समय में हमें अधिक विश्राम की प्राप्ति होगी। जिन्हें योगनिद्रा के प्रारंभिक अभ्यास सिद्ध हो जाते हैं, वे चार घंटे की निद्रा को चालीस मिनट या एक घंटे में पूरा कर सकते हैं। आठ घंटे की निद्रा से जो आराम मिलता है, जिस स्थिति की प्राप्ति होती है, दो घंटे के अभ्यास से आप उतना ही आराम और सजगता प्राप्त कर सकते हैं।

इतिहास में महात्माओं या विचारकों या बड़ी-बड़ी हस्तियों के अनेक उदाहरण हैं जिन्होंने योगनिद्रा के अभ्यास को सिद्ध किया है। गाँधीजी के बारे में मालूम है। दो मिनट आँख बन्द करते, फिर एकदम तैयार। नेपोलियन के बारे में सुनते हैं कि वह घोड़े पर बैठे-बैठे सो जाता था, और फिर लड़ाई के लिए तैयार।

योगनिद्रा चेतना को जाग्रत करने का एक तरीका है। इसमें जो अनुभव होते हैं, निद्रा आती है, उस समय थोड़ा बहुत संघर्ष तो करना पड़ता है। मानसिक

अनुशासन के अभाव में यह आवश्यक होता है कि हम प्रारम्भ में थोड़ा संघर्ष करें। लेकिन जैसे-जैसे अभ्यास होता जाएगा, संघर्ष नहीं करना पड़ेगा। मन विचारशून्य हो जाता है, समयान्तराल हो जाता है। एक बार अगर न सोने की आदत हो गई तो जल्दी ही गाड़ी पकड़ में आ जाएगी। योगनिद्रा में मन बहुत ग्रहणशील और संवेदनशील हो जाता है। बच्चों की संकल्पशक्ति, ग्रहणशक्ति और प्रतिभा को बढ़ाने के लिए यह अत्यन्त उपयोगी अभ्यास है, और बच्चों को आप चाहे किसी विषय की शिक्षा योग निद्रा में दे सकते हैं। योगनिद्रा ही एक ऐसी विधि है जिसमें 'हिस्ट्री ज्योग्राफी बड़ी बेवफा, रात को पढ़ा सबेरे सफा' वाला हिसाब नहीं होता। योग निद्रा कहती है, 'सो के पढ़ा और सबेरे रखा,' क्योंकि इसमें ग्रहणशीलता इतनी तीव्र हो जाती है कि कुछ भूल ही नहीं सकते हैं। जवानों के लिए अच्छी चीज है, क्योंकि जीवन में भागदौड़ की शुरुआत जवानी में होती है। जैसे-जैसे आज विभिन्न उत्तरदायित्वों को ग्रहण करते हैं, वैसे-वैसे तनावमुक्त रहकर सही प्रकार से अपनी क्षमता का उपयोग करना—यही सिखलाना योगनिद्रा का उद्देश्य हो जाता है। बड़ों के लिए अच्छा अभ्यास है ताकि वे स्वयं को शान्त, संयत और संतुलित रख सकें, ताकि रक्तचाप की शिकायत न हो, किसी परिस्थिति में दिल का दौरा नहीं पड़े, मन शान्त रहे। बुजुर्गों के लिए भी अच्छी चीज है, सोने को मिलता है। अतः सभी दृष्टिकोणों से, सभी वर्गों के लिए, सभी अवस्थाओं के लोगों के लिए, योग निद्रा का अभ्यास बहुत उपयोगी है।

चिदाकाश धारणा

अनन्त एवं शुद्ध चेतना के साथ योग की उच्चतम स्थिति की प्राप्ति के उद्देश्य से जो विभिन्न साधनाएँ हैं, उनमें से चिदाकाश धारणा की साधना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं लाभदायक है। इस साधना में योग की विभिन्न प्रक्रियाओं का समावेश है। यदि पूर्ण समर्पण एवं श्रद्धा-विश्वास के साथ साधक निरंतर इसका अभ्यास करे तो उसे सूक्ष्म तथा रहस्यपूर्ण अनुभूतियाँ प्राप्त होंगी, जिससे ध्यान की उच्च अवस्था की ओर प्रस्थान करने के लिए उसका उत्साहवर्द्धन होगा। उचित विधि से यह साधना करने से एवं उसमें सिद्धि प्राप्त करने से साधक आध्यात्मिक प्रकाश की ओर उड़ान भरता है।

योग व्यावहारिक अनुभव तथा अभ्यास की क्रिया है। इसका मात्र बौद्धिक या सैद्धांतिक ज्ञान रहने से कोई लाभ नहीं। तथापि साधना की विभिन्न प्रक्रियाओं का अर्थ, विधि, लाभ आदि ज्ञात होने से साधक को सहायता मिलती है। इसी दृष्टिकोण से चिदाकाश धारणा की पृष्ठभूमि, क्रिया तथा उसके लाभ का संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

चिदाकाश क्या है?

साधक को वास्तविक अभ्यास के पूर्व विभिन्न शब्दों के अर्थ एवं उनके महत्त्व को समझ लेना चाहिए। अत: हम सर्वप्रथम 'चिदाकाश' शब्द का अर्थ एवं तात्पर्य स्पष्ट करेंगे।

'चिदाकाश' शब्द की संरचना चित् और आकाश शब्द से हुई है। चित् का अर्थ है चेतना। इस प्रकार चिदाकाश का मतलब चेतना का आकाश है। आकाश शब्द के प्रयोग से एक अनन्त क्षेत्र का बोध होता है। जब हम चिदाकाश शब्द का उपयोग करते हैं, तब चित् का क्षेत्र सीमित न रहकर असीम हो जाता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि चिदाकाश के अर्थानुसार चेतना का विस्तार वस्तुनिष्ठ संसार से बाहर अनन्त ब्रह्माण्ड तक हो जाता है। यहाँ यह बात विशेष ध्यान देने की है कि 'चित्' को 'चित्त' न समझा जाये। 'चित्त' का सम्बन्ध अंत:करण से है, जिसके अन्तर्गत मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार आते हैं, परन्तु चित् चेतना का पर्यायवाची है। चिदाकाश धारणा वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से स्थूल शरीर से जुड़ी हुई, अंदर क्रियाशील रहने वाली चेतना का विस्तार किया जाता है, सूक्ष्म बनाया जाता है तथा उसे अनन्तता की ओर या शुद्ध चेतना की ओर ले जाते हैं।

चिदाकाश शब्द से सीमारहित क्षेत्र का बोध होता है। योग उपनिषदों में पाँच प्रकार के आकाशों का उल्लेख मिलता है–आकाश, पराकाश, महाकाश,

तत्त्वाकाश एवं सूर्याकाश। प्राकृतिक आकाश अन्तहीन है तथा भौतिक नेत्रों से दिखाई देता है। पराकाश अन्दर एवं बाहर के अंधकार का संकेत करता है। महाकाश, अन्दर एवं बाहर अनुभवगम्य अग्नि की सी चमक का प्रतिनिधित्व करता है। तत्त्वाकाश अन्दर की आत्मा की अनुभूति का दिग्दर्शन कराता है। सूर्याकाश शुद्ध चेतना को प्रदर्शित करता है, जो सौ हजार सूर्यों की भाँति तेजोमय है। ये सभी धारणा के वे स्तर हैं, जिनसे होकर साधक को क्रमश: जाना पड़ता है। यह विषय अनुभूति का है, परन्तु उन साधकों के ज्ञान के लिए इनका वर्णन किया है, जो आध्यात्मिकता के उच्च स्तर पर पहुँचने के लिए अखण्ड साधना करते हैं। ऊपर वर्णित 'व्योमपञ्चक' चिदाकाश धारणा के अन्तर्गत आता है, इसलिए यह विशेष महत्त्व का विषय है।

'धारणा' शब्द का स्पष्टीकरण भी अनिवार्य है। पातंजल योग सूत्र के अनुसार मानसिक शक्तियों को किसी विशेष क्षेत्र या वस्तु विशेष पर केन्द्रित करना ही 'धारणा' है। दूसरे शब्दों में धारणा के अभ्यास में मन एक वस्तु पर एकाग्रता की अवस्था में रहना चाहिए। योग साधना के अन्तर्गत अनेक प्रकार की धारणाओं का समावेश होता है। योग चूड़ामणि उपनिषद् में सोलह आधारों, तीन लक्ष्यों एवं पाँच आकाशों का वर्णन है। हमने पाँच आकाशों का वर्णन किया है, जो ध्यान के विषयाश्रित हैं। इसके अतिरिक्त तीन लक्ष्य हैं–आन्तरिक, बाह्य एवं मध्यम। चेतना के सोलह आत्मिक केन्द्रों से सोलह आधारों का सम्बन्ध है।

चक्रानुसंधान

चक्र चेतना के केन्द्र हैं। इन केन्द्रों के साथ योग करना ही अनुसंधान कहलाता है। चेतना के इन सूक्ष्म केन्द्रों में, सुषुप्तावस्था में दिव्य शक्ति का वास है। अन्तर्मुखता एवं विभिन्न केन्द्रों से सम्बन्ध स्थापित करते हुए व्यक्तिगत चेतना का योग उच्च चेतना से किया जाता है।

चिदाकाश धारणा के अन्तर्गत ग्यारह चक्रों का उल्लेख मिलता है। इन चक्रों से चेतना को सम्बन्धित करते हैं और इनके मध्य घुमाते हैं। चक्रभेदन की द्वितीय अवस्था को प्राप्त कर यह क्रिया की जाती है। इन ग्यारह केन्द्रों का नामकरण इस प्रकार किया गया है–

1. मूलाधार–सबसे नीचे गुदाद्वार और जननेन्द्रिय के मध्य शुक्र स्थान में।
2. स्वाधिष्ठान–जहाँ मेरुदण्ड समाप्त होता है, उससे दो अंगुल नीचे।
3. मणिपुर–नाभि के पीछे मेरुदण्ड में।
4. अनाहत–हृदय के पीछे मेरुदण्ड में।
5. विशुद्धि–गले का पिछला हिस्सा, जहाँ मेरुदण्ड गले की हड्डी से जुड़ता है।
6. आज्ञा–भ्रूमध्य के ठीक पीछे, जहाँ मेरुदण्ड का अन्त होता है।

7. बिन्दु–सिर का सबसे ऊपरी भाग, जहाँ पण्डित लोग चुटिया रखते हैं।
8. सहस्रार–सिर का मध्य भाग, जहाँ छोटे बच्चों का सिर बहुत कोमल होता है।
9. चिदाकाश–आँखें बन्द करने पर जहाँ अन्धकार दिखाई देता है।
10. भ्रूमध्य–दोनों भौहों के बीच का स्थान, जहाँ स्त्रियाँ टीका लगाती हैं।
11. नासिकाग्र–नाक का अगला हिस्सा।

यह बात स्मरण रखिए कि ये चक्र स्थूल या भौतिक अंग नहीं हैं, बल्कि ये आध्यात्मिक सूक्ष्म रचनाएँ हैं, जिनका अनुभव साधना के द्वारा किया जा सकता है। साधक को इनका अच्छी तरह ज्ञान और अनुभव प्राप्त करना चाहिए।

चक्रभेदन

अंतर्मुखता द्वारा जब साधक अपनी अंतर्मुखी चेतना को इन केन्द्रों में स्थिर करने में समर्थ हो जाता है तब चक्रों के अंतरावलोकन या भेदन का प्रयास किया जाता है। उज्जायी प्राणायाम की क्रिया द्वारा यह अभ्यास किया जाता है।

कुछ प्रमुख एवं महत्त्वपूर्ण प्राणायामों में से उज्जायी प्राणायाम एक है। विभिन्न प्रकार के 21 प्राणायामों में इसका विशेष स्थान है। यहाँ प्राण का तात्पर्य श्वसन द्वारा ली जाने वाली वायु से नहीं, वरन् उस जीवनी-शक्ति से है जो सम्पूर्ण सृष्टि

को प्राण-दान देती है। प्राणायाम का अर्थ मात्र श्वसन पर नियत्रंण नहीं, बल्कि प्राण को सुव्यवस्थित, सुस्थिर एवं दीर्घ करना भी है। उज्जायी में कंठ द्वार से श्वास लेते एवं छोड़ते हैं। इससे नाड़ियों के शुद्धिकरण पर प्रभाव पड़ता है।

पूरक क्रिया के समय साधक को यह कल्पना करनी चाहिए कि श्वास या चेतना नासिकाग्र से बिन्दु तक के पाँच चक्रों से होकर जा रही है। रेचक करते समय ऐसी ही कल्पना शेष चक्रों, अर्थात् आज्ञा से मूलाधार तक करनी चाहिए। इस स्थिति में साधक को ऊँची कल्पना करनी होगी तथा चेतना को अपेक्षाकृत शुद्ध एवं सूक्ष्म बनना होगा। वस्तुत: यदि प्रथम अभ्यास में साधक को अंतर्मुखता की प्राप्ति हो गई है तो विभिन्न केन्द्रों में श्वास को घुमाते समय शीघ्र ही उसे इस क्रिया की अनुभूति प्राप्त होगी। साथ ही यदि साधक इस क्रिया के समय लय स्थिति को प्राप्त नहीं होता है तो प्राण शक्ति से विभिन्न केन्द्रों पर आघात करते हुए वह उन्हें एक सीमा विशेष तक जागृत करने में सक्षम होगा। लय की स्थिति आ जाने पर अनुभव प्राप्त नहीं होते।

योग उपनिषदों में लिखा है कि प्राण एवं अपान के द्वारा व्यक्तिगत जीव ऊपर-नीचे होता है, आगे-पीछे होता है, जिसके परिणामस्वरूप अस्थिरता रहती है। यहाँ जीव का तात्पर्य व्यक्तिगत चेतना से है। श्वास एवं मन के बीच प्राणिक सम्बन्ध है। इसलिए यह अत्यावश्यक है कि श्वास को सुनियंत्रित किया जाय। अत: साधना के मार्ग पर आगे बढ़ने के पूर्व आवश्यक है कि साधक प्रारंभिक अवस्था में प्राणायाम का अभ्यास करे। प्राण साधना के पश्चात् चक्रों के प्रति जागरूक रहकर वहाँ चेतना को स्थिर नहीं करना पड़ता, वरन् उसे विभिन्न चक्रों से होते हुए ले जाते हैं। निरन्तर चैतन्यतापूर्वक इसका अभ्यास किया जाता है। प्रक्रिया के प्रति साधक को अखण्ड जागरूकता बनाए रखने की आवश्यकता है। क्रिया यंत्रवत् नहीं होनी चाहिए।

चिदाकाश धारणा के अंतर्गत आने वाली समस्त बातों का अर्थ एवं महत्त्व स्पष्ट करने के पश्चात् अब हम उसकी विधि का विस्तारपूर्वक वर्णन करेंगे। इस साधना के अंतर्गत निम्नलिखित अभ्यास सम्मिलित हैं–

- आसन–शरीर की ठीक स्थिति
- ॐ का उच्चारण
- चक्रानुसंधान
- चक्रभेदन
- धारणा–चिदाकाश पर एकाग्रता की क्रिया, जिसके पाँच भिन्न स्तर हैं।
- चिदाकाश में इष्ट का दर्शन
- ॐ का उच्चारण
- प्रार्थना

- निर्विचार अवस्था का अभ्यास—विचारों को रोकना ताकि मन विचाररहित हो जाए।
- शुभ संकल्प-बुद्धि की सहायता से किसी सात्त्विक विचार पर मन को स्थिर करना, जिसका पालन दैनिक जीवन में किया जाए।
- साधना के महत्त्व पर चिन्तन।

किसी भी साधना की यह प्रथम आवश्यकता है कि साधक किसी शान्त स्थान में उपयुक्त सुखद आसन में बैठे। यदि आसन साधक के उपयुक्त नहीं है या साधक उसका अभ्यस्त नहीं है तो स्वभावत: उसके पैर आदि में दर्द होगा। साधना में कुछ समय लगता ही है। उतनी देर यदि साधक उस आसन में सुखपूर्वक न बैठ सके तो उसकी अंतर्मुखता भंग हो जायेगी, वह बहिर्मुखी बन जायेगा। इसलिए साधक के लिए प्रथम महत्त्वपूर्ण आसन है, पद्मासन या सिद्धासन। योगियों द्वारा ध्यान के लिए ये दोनों आसन सर्वोत्तम माने गए हैं। यदि इन दोनों में से किसी आसन को करना संभव न हो, तो स्वस्तिकासन में बैठा जा सकता है।

आराम से बैठने के उपरान्त शान्तचित्त हो गुरु या इष्ट से प्रार्थना करनी चाहिए। इसके पश्चात् कुछ मिनट के लिए, दाहिने एवं बाँये नासिका छिद्र से श्वास-प्रश्वास क्रिया करनी चाहिए। यह क्रिया लाभप्रद है, परन्तु साधना की आवश्यक शर्त्त नहीं है। अजपाजप ध्यान की पंचम अवस्था में पहुँचने के पश्चात् यह आशा की जाती है कि साधक इस क्रिया में निपुण एवं इससे अभिज्ञ हो।

द्वितीय अवस्था ॐ के उच्चारण की है। उच्चारण बहुत तेज या अत्यन्त धीमी आवाज में नहीं करना चाहिए। ध्वनि मध्यम रहे। उसकी गति धीमी तथा लयबद्ध

हो। सर्वप्रथम श्वास भीतर खींचिये तथा रेचक करते हुए ॐ का उच्चारण कीजिए। उच्चारण मूलाधार से ऊपर सहस्रार तक कीजिए। उच्चारण की पुनरावृत्ति ग्यारह या तेरह बार कीजिए। साधक उच्चारण काल में चैतन्य रहे। मूलाधार से ऊपर सहस्रार तक ध्वनि को ले जाते समय उसकी तरंगों की आंतरिक अनुभूति कीजिए।

तृतीय अवस्था में साधक चक्रानुसंधान करता है। विभिन्न चक्रों का स्थान एवं महत्त्व स्पष्ट किया जा चुका है। साधक को नासिकाग्र से प्रारम्भ कर मूलाधार तक जाना है। तत्पश्चात् मूलाधार से ऊपर नासिकाग्र तक आना है। चक्र पर स्थिर होने के लिये या व्यक्तिगत बहिर्मुखी चेतना को अंत:स्तर पर लाने के उद्देश्य से यह अभ्यास किया जाता है। ये चक्र सूक्ष्म एवं अगोचर हैं। इसलिए तीव्र कल्पना के साथ अंत:चक्षु से इन्हें आंतरिक रूप से ही देखना चाहिए। आरोहण-अवरोहण की इस क्रिया की तीन आवृत्तियाँ कीजिए।

चक्रों की स्थिति का ज्ञान करने के उपरांत चतुर्थ अवस्था में साधक को उज्जायी के सहारे इस अनुभव का प्रयास करना चाहिए कि उसकी चेतना स्पष्टत: इन्हीं केन्द्रों से होकर जा रही है। उज्जायी के साथ उसकी चेतना नासिकाग्र से बिन्दु तक ऊपर की ओर जाती है एवं यहाँ कुछ समय के लिए वह श्वास को रोकता है। तत्पश्चात् रेचक करते हुए वह मेरुदण्ड से होते हुए आज्ञा चक्र से मूलाधार चक्र में अपनी चेतना को उतारता है। इस आधार चक्र पर पुन: कुछ देर रुक कर पूरक करते हुए वह क्रिया की द्वितीय आवृत्ति प्रारंभ करता है। इस क्रिया के समय जो संवेदना उत्पन्न होती है, उसके अनुभव का पूर्ण प्रयास करना चाहिए। सम्भव है कि उसे ताप या ठण्ढक का अनुभव हो, परन्तु इसके प्रति चैतन्य बनकर एकाग्रता में बाधा उपस्थित नहीं करनी चाहिए। अनुभूतियों को ग्रहण करते हुए उसे चेतना एवं संवेदना के प्रति द्रष्टा भाव रखना है। यदि संवेदना की अनुभूति न हो तो निराश होने की कोई बात नहीं। प्रारंभिक स्थिति में कुछ साधक इस अभ्यास में अपने स्नायु संस्थान को लययुक्त नहीं कर सकते या आवश्यकतानुसार एकाग्रता की प्राप्ति उन्हें नहीं होती। परन्तु दृढ़ता एवं संकल्प के साथ निरन्तर साधना की जाए, तो साधक निश्चित रूप से अनेक संवेदनाओं का अनुभव करेगा। क्रिया की पुनरावृत्ति तीन बार करनी चाहिए। प्रारंभ में संवेदना का अनुभव करते हुए धीरे-धीरे चेतना को घुमाना चाहिए। अभ्यासोपरांत यह गति तीव्र करनी चाहिए। इससे एक अखण्ड, अनन्त वृत्त का निर्माण होगा।

साधना की पंचम क्रिया चिदाकाश धारणा की है, जिसकी निम्नांकित पाँच अवस्थाएँ हैं–

प्रथम अवस्था–साधक नेत्रों को बंद रखते हुए नेत्रों के सम्मुख मस्तक में दिखने वाले अन्धकार का अवलोकन करे। वह मात्र द्रष्टा की भाँति उसे देखे, परन्तु उसके विश्लेषण का प्रयास न करे। यह प्रथम अवस्था हुई।

द्वितीय अवस्था– धीरे-धीरे साधक को उपर्युक्त अन्धकार के स्थान पर विभिन्न प्रकार के रंग, तारे, स्वर्णिम प्रकाश, नीली लौ, तेज प्रकाश की किरणें या कई रंगों का मिश्रण दृष्टिगत होगा। इस समय साधक का कार्य मात्र इनका दर्शन करना है। इनके प्रकाशन के कारण, अर्थ अथवा किसी विश्लेषण से उसे कोई सरोकार नहीं, चाहे वह उसके भौतिक जीवन से सम्बन्धित विचार हो या आध्यात्मिक अनुभव।

तृतीय अवस्था– इस स्तर पर साधक को ध्यान की अधिक गहराई में पहुँचना पड़ता है तथा कल्पना शक्ति को भी अधिक तीव्र बनाना पड़ता है। उसे यह देखना चाहिए कि उसके चारों ओर छाए अन्धकार में उसकी चेतना गहन से गहनतम होती जा रही है। यह चेतना की उड़ान है, जिसे ईसाई धर्म में 'आत्मा की अंधेरी रात' कहा गया है। इस अवस्था में चेतना को, चारों ओर के इस अन्धकार की खोज एवं उसकी व्याख्या तथा विश्लेषण की अनुमति दी जा सकती है। एकाग्रता का स्तर जितना ऊँचा होगा, चेतना का स्तर उतना ही सूक्ष्म होगा। साथ-ही साधक को यह अनुभव होगा कि चेतना इस अभेद्य तथा अनन्त अन्धकार के उस मार्ग की गहराई में प्रवेश करती जा रही है जो अन्वेषण से परे है। इस अभ्यास से मानसिक संचरण की आधारशिला तैयार होती है। इस क्रिया की सिद्धि सूक्ष्म आत्मिक शक्ति के आंतरिक प्रवाह का मार्ग प्रशस्त करती है और साधक के विकास का मार्ग खुलता है।

चतुर्थ अवस्था– पूर्व अभ्यास के उपरांत साधक अपने अन्तर में चारों ओर व्याप्त अंधेरे की खोज करता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि वह उस अंधेरे की पूर्णत: छानबीन करने का प्रयत्न करता है जो उसके ऊपर, नीचे एवं चारों ओर व्याप्त है। यह अभ्यास चेतना के विस्तार के लिए है। मरुस्थल में भटका यात्री मार्ग पाने के लिए आकाशवृत्त एवं चारों ओर की बातों का पता लगाने का प्रयत्न करता है, ठीक इसी प्रकार साधक इस अन्धकार में प्रकाश की ओर जाने के लिए मार्ग की खोज करता है।

पंचम अवस्था– यह अन्तिम क्रिया है। इस अवस्था में साधक को स्वयं को ज्ञान के उस विस्तृत क्षेत्र, अर्थात् चिदाकाश में स्थित करना है जिसकी खोज में वह प्रयत्नशील था। साधक को चाहिए कि वह अन्य समस्त प्रयासों का अन्त कर दे, परन्तु उसे इस बात का पूर्ण ज्ञान रहे कि वह आंतरिक व्योम के मध्य में है, जिसका अन्वेषण वह अभी तक कर रहा था। वस्तुत: यह उस ब्रह्माण्डीय चेतना के स्तर पर व्यक्तिगत चेतना का विस्तार है जो स्वयं उसके अन्दर विद्यमान है। अभ्यास की सफलता के लिए वस्तुनिष्ठ स्वरूप का त्याग करना चाहिए। अन्तिम अवस्था में साधक को यह समझना चाहिए कि अन्तिम विश्लेषण में वह समस्त ब्रह्माण्ड के मध्य में है। अनन्त चेतना उसके बाहर-भीतर एवं चारों ओर होती है। अनन्त चेतना एकरूप हो जाती है। दोनों के मध्य किसी प्रकार की भिन्नता नहीं

रह जाती। पंचम अवस्था में कुछ काल तक स्थिर रहने के पश्चात् साधक को अपने अभ्यास का अन्त कर देना चाहिए एवं कुछ अवधि तक इष्टदेव की मूर्ति का चिदाकाश में दर्शन करने का प्रयत्न करना चाहिए।

साधना के अन्त में पूर्व वर्णित विधि से ॐ मंत्र का उच्चारण ग्यारह या तेरह बार करना चाहिए। इसके पश्चात् साधक अपनी मुक्ति तथा मानवीय गुणों के लिए हाथ जोड़कर प्रार्थना करे। तत्पश्चात् विचार प्रक्रिया को रोककर शून्यता का निर्माण करना चाहिए। सांसारिक चेतना पर आने के पूर्व यह अन्तर्मुखता या अन्तर्मौन की स्थिति है। सबसे अन्त में साधक को सुनिश्चय करना चाहिए कि उसके साधना-मार्ग की कमजोरियों का अन्त हो जाए।

अजपा जप और चिदाकाश धारणा के अभ्यास में बहुत निकट का सम्बन्ध है। वैसे तो योग की सभी क्रियाओं में चिदाकाश का विशेष महत्त्व है। जप, ध्यान, योगनिद्रा, त्राटक, अन्तर्मौन तो चिदाकाश के ही रूप हैं। अधिकतर लोगों की समस्याएँ चित्त की गहराई में छिपी पड़ी रहती है, जो ध्यान-जप के अभ्यास में निकलने लगती हैं। आपको अपनी साधना में प्राप्त अनुभव के प्रति सतर्क रहना होगा। धीरे-धीरे आपके मानसिक तनावों का अन्त होकर आध्यात्मिक अनुभव होने लगेगा और चिदाकाश में दिखने वाले सभी दृश्य केवल ईश्वरीय माया रूप जान पड़ेंगे। चित्त एकाग्र होता जाएगा और सांसारिक माया जाल से मुक्त होकर केवल उस आत्म-स्वरूप परमब्रह्म की प्राप्ति की दृढ़ इच्छाशक्ति बढ़ती जाएगी।

यह आशा की जाती है कि साधना की समाप्ति के उपरांत साधक कुछ समय के लिए अभ्यास का अर्थ एवं महत्त्व तथा जीवन के अन्तिम उद्देश्य का ध्यान करे, जिसकी प्राप्ति वह योग साधना के माध्यम से कर सकता है। उसे यह समझने का प्रयत्न करना चाहिए कि व्यक्तिगत चेतना शुद्ध चेतना का ही अंशमात्र है। केवल तमोगुण की प्रधानता के कारण ही हम उन्हें एक-दूसरे से भिन्न समझते हैं। कुण्डलिनी शक्ति, दिव्य शक्ति या परमशिव शक्ति उस दैवी शक्ति को प्रदर्शित करती है, जो अपने क्रियात्मक क्षेत्र में जगत् की उत्पत्ति के लिए उत्तरदायी है एवं स्थिर अवस्था में अनन्त चेतना में तथा सुषुप्तावस्था में विराजमान है।

सत्यम् वाणी

हम तुमलोगों के झंझट में नहीं पड़ते। क्यों? इसलिए कि तुम अपनी जिन्दगी तो अपनी मर्जी से चलाते हो और जब समस्या होती है तो मेरे पास आते हो। मैं उसी आदमी का भार अपने ऊपर लेता हूँ जो पूरा भार मेरे ऊपर डाल देता है, जिसका मैं पूरा नियंत्रण करता हूँ। अब स्टेयरिंग तुम कन्ट्रोल करो, ब्रेक हम कन्ट्रोल करें, यह हमसे नहीं होगा। लोग ऐसे ही हैं। घर-गृहस्थी तो चलाना आता नहीं उनको। सबसे पहले उनको शादी की जल्दी पड़ी रहती है, बच्चा पैदा करने की पड़ी रहती है, यानि घर-गृहस्थी का सिस्टम ही तुमलोगों का ठीक नहीं है।

गुरु और शिष्य के बीच जो सम्बन्ध होता है वह पूर्ण होता है, आधा-अधूरा नहीं होता। शिष्य अपनी मर्जी पर चलता रहे, जब दिक्कत हो तो गुरुजी से पूछता रहे, हम उस किस्म के आदमी नहीं हैं। इसके लिये तुम मुंगेर में स्वामी निरंजन से बात करो। उन लोगों का दुनिया में, प्रपंच में मन लगता है, हमारा मन नहीं लगता।

दूसरी बात क्या है, हिन्दुस्तान का आदमी अपने घोंसले से बाहर नहीं निकलेगा। अपनी परम्पराओं को तोड़ नहीं सकता और चाहता है धन-सम्पत्ति। लक्ष्मी उसी के पास आती है जो स्वतन्त्र जीवन बिताते हैं। बन्धे हुए समाज में लक्ष्मी नहीं आती है।

मृत्यु और पुनर्जन्म

जब किसी आदमी की मृत्यु होती है तो वह इस प्रकार है जैसे हमारा यह मकान है। हम यहाँ तीस-चालीस-पचास साल से रहते हैं, हमें यह मकान अब काफी नहीं पड़ता है, छोटा पड़ता है या महँगा पड़ता है, और हम इसको छोड़कर दूसरी जगह चले जाते हैं। जब हम दूसरी जगह चले जाते हैं तो इस मकान से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। दोनों मकान अलग-अलग हैं। उसी तरह से जो ज्योतिस्वरूप आत्मा है, जो कर्मों के कारण एक शरीर से दूसरे शरीर में जाती है, वह एक किरायेदार की तरह है जो एक शरीर को धारण कर लेता है। अब उस शरीर का नाम स्वामी सत्यानन्द सरस्वती है, यह नाम दे दिया पण्डित लोगों ने, गुरुजनों ने। किसी नाम का ठप्पा लगा दिया। जैसे इस मकान का नाम आनन्द कुटीर है, उसका नाम चित्रकूट है, उसका नाम फलाना निवास है, वैसे ही इस शरीर का नाम स्वामी सत्यानन्द है। जब आदमी की मृत्यु होती है, शरीर यहीं छूट जाता है। इस बात को तो सभी जानते हैं, प्रमाणित करने की कोई जरूरत नहीं। जैसे यह मकान हमारे साथ नहीं जाता है, वैसे यह शरीर भी नहीं जाता। यह शरीर जो तुम हो, उसका दूसरे जन्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। हम ब्राह्मण हैं, क्षत्रिय हैं, अग्रवाल हैं, कुछ भी हैं, जब हम दूसरे

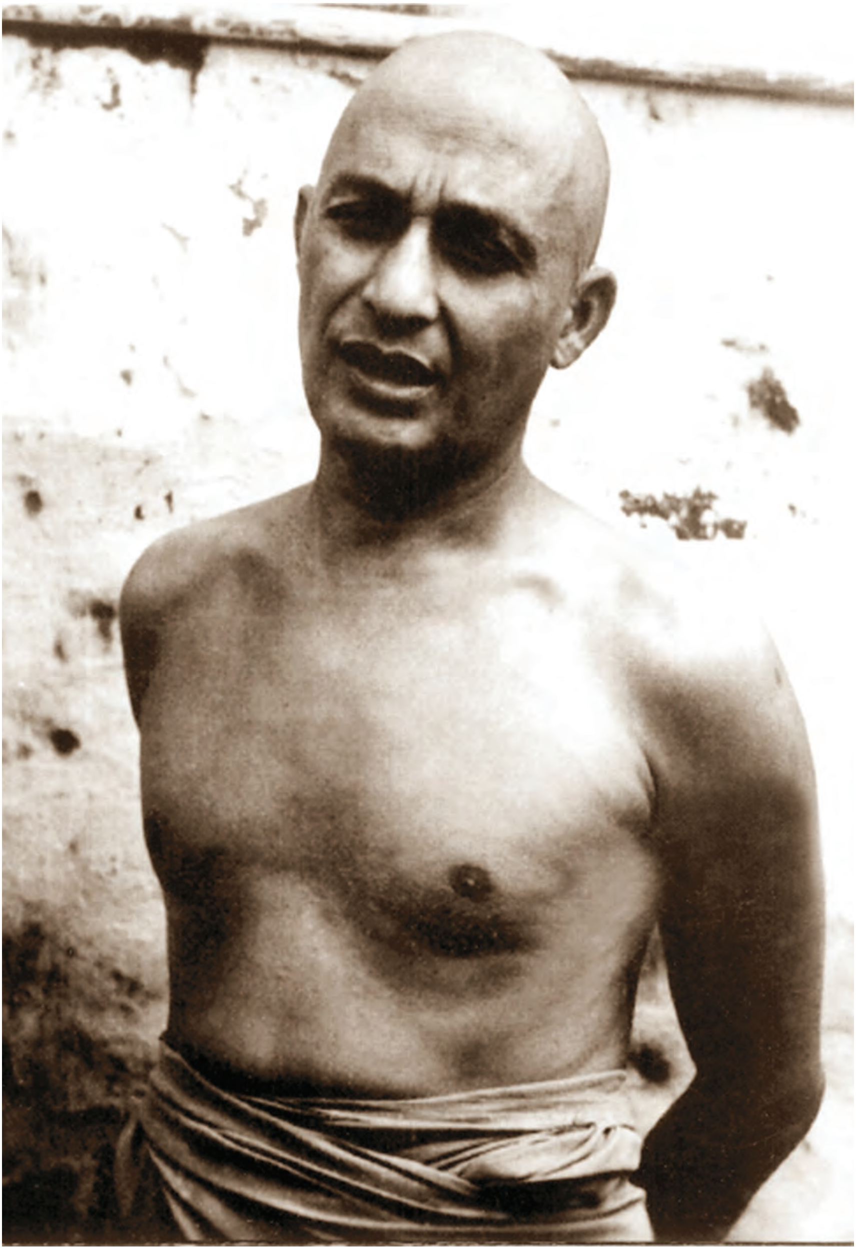

घर में जाते हैं तो वह घर अलग होता है। यह टिन का घर है, वह बंगला हो सकता है या फूस की कुटिया भी हो सकती है। दोनों अलग-अलग हैं।

जीवात्मा जब शरीर को छोड़ती है तो उसके पीछे कोई कारण होता है। जीवात्मा अपनी इच्छा से शरीर नहीं छोड़ती। अपनी इच्छा से केवल योगी-महात्मा शरीर छोड़ते हैं, बाकी संसार में जो लाखों-करोड़ों गृहस्थ हैं वे अपनी इच्छा से शरीर नहीं छोड़ते, मृत्यु उसका कारण बनती है। पर जो योगी-महात्मा होते हैं, उनके चले जाने का कारण मृत्यु नहीं है, वे अपनी इच्छा से जाते हैं। किसी ने तुम्हें घर से निकाल दिया या तुम अपने से घर छोड़कर चले गये, दोनों अलग-अलग चीजें हुईं न? संसार में जो सारे लोग माया-ममता में पड़े हुए हैं, वे अपनी इच्छा से घर छोड़कर नहीं जाते, उनको निकाला जाता है। पर जो योगी-महात्मा या सिद्ध-त्यागी होते हैं वे अपनी इच्छा से ठीक समय पर शरीर को छोड़ देते हैं।

शरीर छोड़ देने के बाद उनका पूर्व-जन्म के शरीर से, परिवार से और माता-पिता से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। उनका सम्बन्ध केवल उनके कर्मों से रहता है। जो कर्म इस जन्म में किये, जो कर्म पूर्व-जन्म में किये पर जिनका खुलासा-निपटारा नहीं हुआ, वे ही कर्म उनके होते हैं। अगर हम शरीर छोड़कर जायेंगे तो हमें न तो मुंगेर से मतलब, न ऋषिकेश से मतलब, न अपनी जाति से मतलब, न ही अपने माता-पिता से मतलब। वह सब छूट गया, मगर जो कर्म हमने किये हैं, अच्छे-बुरे, काम, क्रोध, लोभ, दान-पुण्य, भगवद्-भजन, जो भी पूँजी हमने कमाई है वह पूँजी हमारे साथ सूक्ष्म रूप में जाती है। अगले जन्म में स्वामी सत्यानन्द से मेरा कोई मतलब नहीं, मुंगेर, ऋषिकेश या कुमाऊँ से मेरा कोई मतलब नहीं, माता-पिता-भाई-बहन से कोई मतलब नहीं, मैं मर्द हूँ या औरत हूँ, उससे भी मेरा कोई मतलब नहीं, मैं लम्बा हूँ, चौड़ा हूँ उससे भी मेरा कोई मतलब नहीं है। शास्त्रों में यही लिखा है।

मान लो तुम बम्बई में रहते हो। तुमने बैंक में पैसा जमा किया, लाख या पचास हजार, जो भी हो। जब तुम बम्बई छोड़कर जाते हो तो बम्बई को साथ में नहीं ले जाते, अपने घर को साथ नहीं ले जाते, अपनी नौकरी को भी अपने साथ नहीं ले जाते, बैंक को भी अपने साथ नहीं ले जाते, केवल पैसा ले जाते हो। पैसा-पूँजी ही आपके साथ रहती है। यह केवल समझाने के लिये उदाहरण दे रहा हूँ, पर इस बात को अच्छे से याद रख लो।

दूसरी बात, जीवात्मा जब शरीर छोड़ कर जाती है तो उसका तुरन्त पुनर्जन्म नहीं होता। न्यूनतम अवधि होती है तेरह दिन। जो शास्त्रों में लिखा है उसको निचोड़कर बता रहा हूँ। स्त्री के गर्भ में वीर्य प्रवेश करता है तो वह तुरन्त गर्भवती नहीं होती। जब रज और वीर्य का संयोग होता है, तब जाकर भ्रूण तैयार होता है। उसी तरह से जीवात्मा को कम-से-कम तेरह दिन लगते हैं तैयार होने में। तेरहवें

दिन ही वह गर्भस्थ हो जाए, यह भी कोई जरूरी नहीं। क्यों? जीवात्मा को अपने कर्मों के अनुसार शरीर मिलता है। आखिर तुम जहाँ भी जाते हो, कोई मतलब लेकर ही जाते हो न? दुकान में जाते हो सामान लेने के लिए, ऑफिस में जाते हो व्यापार करने के लिए, उसी तरह जीवात्मा जहाँ भी जाती है अपना कर्म लेकर जाती है। कर्म पर उसकी दृष्टि रहती है, और नए जन्म में उन कर्मों को वहाँ भोगती है। यह हुई दूसरी बात।

तीसरी बात यह कि जो दुर्घटनाग्रस्त होते हैं, जिनका आकस्मिक निधन होता है, उनका जन्म तुरन्त नहीं होता। कभी नहीं। वे भटकते हैं। मरना तो चाहते नहीं थे, सहसा मौत आ गई, तैयार तो थे नहीं। जैसे हम हैं, हम तैयार हैं, हमारी उम्र कहती है तैयार रहो, अब नहीं तो दस साल के बाद सही। हो सकता है हम 90-100 साल तक भी जीवित रहें, वह दूसरी बात है, मगर उम्र कहती है, बेटा तुम

तैयार रहो। अब ऐसे व्यक्ति के लिए, जो तैयार है, बात दूसरी है, मगर जो तैयार ही नहीं है, आठ साल का लड़का है, छः साल की लड़की है, जिस चीज की तुम आशा ही नहीं करते हो, अचानक उस पर पड़ जाते हो तो क्या होता है? भटकते हो। तब उसके लिये श्राद्ध आदि कर्म लागू होते हैं। जो दुर्घटनाग्रस्त होते हैं उनके श्राद्ध का एक नियम होता है, सामान्य व्यक्ति की मृत्यु जो होती है उसका अलग नियम होता है। हमलोगों का श्राद्ध नहीं होता है क्योंकि हमलोगों का श्राद्ध संन्यास के दिन कर लेते हैं। जिस दिन संन्यास लेते हैं उसी दिन हम लोग पिण्ड-दान कर लेते हैं, इसलिए हम संन्यासियों का श्राद्ध नहीं होता। वैरागियों का भी श्राद्ध नहीं होता। अविवाहित और बिना सन्तान वाले का श्राद्ध दूसरा है।

श्राद्ध के माध्यम से उस जीवात्मा को यह संदेश देना है कि अब तुम जाओ, तुम यहाँ लटके मत रहो। दरवाजे पर एक भिखारी आ गया, दिनभर खड़ा है, किसी ने कुछ बोला नहीं, वहीं लटकते रहेगा। फिर कोई जाकर बोलता है उसको, 'देखो भाई, यहाँ तो कुछ मिलने वाला है नहीं। चार रोटी लो, नमक लो और चले जाओ।' उसका निपटारा कर दिया। जीवात्मा का निपटारा करने के लिये, उसे गति देने के लिए ही श्राद्ध आदि विधान किये जाते हैं। सबके लिए ये विधान कारगर हों, कोई जरूरी नहीं है। कभी-कभी नहीं भी होता है। कुछ आत्माएँ जाने के लिए बड़ी अनिच्छुक होती हैं। उनके लिये फिर गया-श्राद्ध का विधान है। जब तुम्हारे घर से कोई नहीं जाता है तो पुलिस को बुलाते हो न? वैसे ही गया-श्राद्ध को अंतिम माना जाता है।

जिस व्यक्ति की मृत्यु हुई है, उस व्यक्ति की गति हुई कि नहीं, मतलब उसको आगे के सफर के लिए रेलगाड़ी का टिकट मिला कि नहीं, आखिर यह कैसे जानोगे? इसके लिये तो किसी के पास उपाय है नहीं। इसलिये हमलोगों के यहाँ विधान है कि जब कभी किसी के घर में मृत्यु होती है तो उसके कारण को देखना होता है–अकस्मात् मृत्यु, दुर्घटना, अनपेक्षित मृत्यु, सामान्य मृत्यु। जब हम जायेंगे तो सामान्य मृत्यु मानी जायेगी। 80-90 साल में जो आदमी गया वह अपेक्षित है, 8-10 साल में जो जाता है वह अपेक्षित नहीं होता। न तो हम अपेक्षा करते हैं न तो वह। इसको कहते हैं असामान्य या अकाल मृत्यु। वह दुर्घटना की वजह से हो सकती है, और कभी-कभी ऐसा भी होता है कि आदमी का पता ही नहीं चलता है। जब मृत्यु के कारण का, स्थान का और तिथि का पता नहीं चले, तब फिर उसके लिये अलग से श्राद्ध होते हैं। स्त्री का श्राद्ध, संन्यासी का श्राद्ध, अज्ञात मृत्यु का श्राद्ध–सब अलग-अलग होते हैं।

ये श्राद्ध क्यों किये जाते हैं? इसलिए कि महात्माओं के सिवा कोई भी व्यक्ति मरना नहीं चाहता है। मरते सब हैं, शत-प्रतिशत, मगर कोई मरना नहीं चाहता। महाभारत में यक्ष-प्रश्न का प्रसंग आता है। यक्ष ने युधिष्ठिर से पूछा था कि संसार

में सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है, तो युधिष्ठिर ने जवाब दिया था कि सबेरे और शाम, दिन-प्रतिदिन लोग मर रहे हैं, मगर जो बचे हुए हैं वे समझते हैं कि वे नहीं मरेंगे–

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्।
शेषा: स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमत: परम्॥

बाकी लोग जीना ही चाहते हैं, सबसे बड़ा आश्चर्य दुनिया का यही है। कुछ गिने-चुने महात्मा लोग ऐसे हैं जो जाने के लिए तैयार हैं। उन लोगों को छोड़ दो, बाकी सब लोग घर से, माँ-बाप से, बेटा-बेटी से, पैसा-दुकान से इतने चिपके रहते हैं कि जबरदस्ती निकाल भी दो तो पीछे ही देखते रहते हैं। सारी दुनिया का यही हाल है। इसलिये उस आत्मा को श्राद्ध के द्वारा बोला जाता है, जाओ, जाओ। उसको दरवाजे पर ही से लौटा दिया जाता है। जैसे तुम किसी भिखारी को रोटी दे देते हो और जब नहीं जाता है तो पुलिस को बुलाकर निकलवाते हो, उसी तरह से जो अनिच्छुक आत्मा है, जो उस घर के बन्धन में बंधी हुई है, आसक्तियों में बंधी हुई है, उस घर से चिपकी हुई है, वहाँ से जाने का नाम नहीं लेती, उस आत्मा को मुक्त करने के लिये श्राद्ध किया जाता है।

आत्मा को मुक्त करना ही चाहिये। इसीलिये यह नियम है कि जब किसी के घर में मृत्यु होती है तो उस आत्मा को श्राद्ध आदि नियमों के साथ विदा किया जाता है। हमलोगों के यहाँ हमेशा कहा जाता है, सत्संग में जाओ, तीर्थ करो, ज्ञान की पुस्तकें पढ़ो, भोजन का नियम बतलाया जाता है, ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है। क्यों? इसलिए कि उस समय बुद्धि अगर शुद्ध रहेगी तो आसक्ति कम रहेगी। यह स्वाभाविक है। आदमी को अपने जूते से, अपनी घड़ी से कितना प्रेम है, तो बेटा-बेटी से प्रेम नहीं होगा क्या, आसक्ति नहीं होगी क्या? आसक्ति वास्तविकता है और यह आसक्ति मेरी तरफ से भी है, तुम्हारी तरफ से भी है। जो गया उसमें भी आसक्ति है, वह मुक्त नहीं है और जो है, उसमें भी आसक्ति है। वह तो चला गया, मगर देख रहा है हमारी तरफ। उसको बोला जाता है, 'बेटा जाओ, तुम्हारे यहाँ रहने से कोई फायदा नहीं। अगर तुम यहाँ रहोगे भी तो क्या मिलेगा?'

जीवन में सुख-दु:ख का भोग बिना शरीर धारण किये नहीं होता है। लोफर आत्मा, जो इधर से उधर भटक रही है, उसे सुख-दु:ख का भोग नहीं होता है। न भोजन का भोग होता है, न वस्त्र का भोग होता है, न पुत्र का भोग होता है, न स्त्री का भोग होता है, न धन का भोग होता है, कुछ नहीं होता। यह शरीर तो भोग के लिये मिला है हमको। शरीर के बिना जीवात्मा गेहूँ के बीज की तरह है। जब तक वह धरती में नहीं जायेगा तब तक वह गेहूँ का पौधा नहीं हो सकता। सुख-दु:ख भोगने के लिये जीवात्मा को बीज की तरह खेत में आना पड़ेगा। इसलिये उन आत्माओं के लिए श्राद्ध आधि विधान हैं ताकि वे भटके नहीं।

ऐसी कितनी आत्माएँ हैं जो भटकती हैं। कुछ थोड़ी उद्दण्ड किस्म की होती हैं, तंग करती हैं, घर में कुछ गिरा देती हैं। सुना होगा आप लोगों ने। वे क्रोधी आत्माएँ हैं, और कुछ आत्माएँ निष्क्रिय स्वभाव की होती हैं, कुछ करती नहीं, बस लटकी रहती हैं कहीं-न-कहीं। जिस घर में थीं उसी घर में रहती हैं। हमें जब इंग्लैण्ड में आश्रम के लिए स्थान लेना था, तो ऐसे-ऐसे बंगले देखे जो सिर्फ चार-पाँच हजार पौण्ड में मिल रहे थे। क्यों? वे भूत-बंगले थे। वहाँ कोई रहता नहीं, उन्हें हॉन्टेड हाउस बोलते हैं। ऐसे बड़े-बड़े किले और बंगले हैं वहाँ। हमें ले जाते थे वहाँ, मगर हमें तो युक्ति मालूम थी। हम वहाँ यज्ञ करते थे, पूजा-पाठ करवाते थे, भजन-कीर्तन करवाते थे। इस तरह बहुत-से बंगले कौड़ियों के दाम मिले हमें।

मृत्यु के कई कारण होते हैं, बहाना कुछ भी हो सकता है। कोई उम्र होने से मरता है, कोई बीमारी से मरता है, कोई जहर खाने से मरता है, कोई दुर्घटना में मरता है। मरने के ये सब बहाने हैं, मगर मूल चीज कुछ और है। मृत्यु का कारण दुर्घटना या उम्र नहीं होती। मृत्यु का कारण केवल यह है कि जीवात्मा का उस शरीर में अब कर्म खत्म हो गया। अब चूँकि उसे पता नहीं है, इसलिये कोई रिक्शा से गिर जाता है तो कोई हवाई-जहाज से, कहीं कुछ हो जाता है उसको। बीमारी, दुर्घटना या उम्र तो एक बहाना है, मृत्यु वह घटना है जब जीवात्मा शरीर को छोड़ती है।

जीवात्मा स्वेच्छा से भी कुछ समय के लिए शरीर छोड़ सकती है। आदिशंकराचार्य के बारे में कहानी आती है। मण्डन मिश्र के साथ उनका शास्त्रार्थ हो रहा था तो मण्डन मिश्र की अर्धांगिनी सरस्वती ने उनसे कुछ ऐसे प्रश्न किये जिनका उत्तर शंकराचार्य को अनुभव से मालूम नहीं था। उन्होंने समय माँगा और

वहाँ से चले गये किसी पर्वत पर। उन्होंने अपना शरीर अपने शिष्यों के हवाले कर दिया और शरीर छोड़कर किसी राजा के शरीर में प्रवेश कर गये। वह राजा मर गया था, पर जब उन्होंने उस शरीर में प्रवेश किया तो पुनर्जीवित हो गया। उस शरीर में प्रवेश करने के बाद उन्हें जो कुछ सीखना था, अनुभव करना था, सो कर लिया। लेकिन राजमहल के लोग बोलने लगे कि यह राजा तो ऐसा नहीं था। आखिर शंकराचार्य तो ज्ञानी थे, सिद्ध थे, इसलिए राजा भी ज्ञानी सन्त की तरह लगता था। यह क्या हो गया? तो विद्वानों ने कहा कि किसी की आत्मा उसके अन्दर प्रवेश कर गई है। तब दरबारी बोले, 'अरे, तो उसके शरीर को नष्ट कर दो ताकि आत्मा वापस न जाए।' सारे राज्य में खोज करवाई कि कहीं कोई शरीर पड़ा हुआ तो नहीं है। पर्वत पर उनके शिष्य, हस्तामलक एक गुफा में उनके शरीर की रक्षा कर रहे थे। शंकराचार्य जी ने उन्हें मन्त्र भी बताया हुआ था वापस लाने का। हस्तामलक ने मन्त्र का सन्धान किया और फिर वे वापस शरीर में आ गये। महात्मा लोग समाधि अवस्था में या परकाया-प्रवेश की अवस्था में जब जाते हैं तो उनका शरीर बिल्कुल मुर्दे जैसा हो जाता है, उसमें प्राण नहीं रहते। जब जमीन के अन्दर एक-एक महीने जड़ समाधि में जाते हैं, तब उनके बाल नहीं बढ़ते। जीवित व्यक्ति के ही बाल बढ़ेंगे न, मरे हुए की क्या दाढ़ी बढ़ेगी?

हर एक व्यक्ति को मृत्यु का अर्थ, मृत्यु का कारण और मृत्यु का उद्देश्य समझना चाहिये कि मृत्यु होती क्यों है। अगर हम सब मरे नहीं, तो बाप-रे-बाप! बहुत मुश्किल हो जायेगी। जनसंख्या कितनी बढ़ जायेगी! लम्बी आयु भी एक बहुत बड़ी समस्या है। हमारे एक मित्र थे जो बहुत लम्बी आयु तक जीवित रहे। राजनेता थे, अब तो वे नहीं रहे, 99 या 100 साल में उनकी मृत्यु हुई। अस्सी साल की उम्र के बाद वे हमसे कहते थे, 'स्वामीजी हमको भेज दो।' हम कहते, 'क्या जल्दी पड़ी है?' बोलते, 'क्या करें? कुछ तो करने को है नहीं, जीवन में अब मेरे लिये है क्या?' पत्नी तो जीवित थी नहीं, साठ साल का उनका बेटा था, पोता था, पर-पोता था, चार-पाँच पीढ़ियाँ थीं उनकी।

स्वामीजी, उम्र बढ़ने पर पिछले बीते हुये क्षणों का बहुत ख्याल आता है।

हाँ, बीते हुये क्षणों का ख्याल जरूर आता है। देखो, जेब से अगर सौ रुपया खो जाए किसी का तो कुछ देर तो याद रहता ही है। निर्भर करता है आदमी किस किस्म का है। कुछ लोगों पर तो असर नहीं पड़ता, पर बहुत-से लोगों पर सौ रुपया खोने से बड़ा असर पड़ता है। कई दिनों तक वे सोचते रहते हैं, फिर वह मिट जाता है। उसी तरह से कोई जमीन-जायदाद या व्यापार खत्म हो जाए तो बहुत दिनों तक उसका मलाल रहता है। फिर वह भी मिट जाता है। उसी प्रकार किसी व्यक्ति से तुमने अपेक्षाएँ रखी हों, उस पर तुम आशा लगाये बैठे हो, अगर वह बीच में चला जाता

है तो कुछ दिन तक शोक चलता ही है। यह एक ऐसा घाव है जो भावना और मन पर पड़ता है। भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक चोट है, फिर थोड़ी देर में भर जाती है। इसमें समय लगता है, मगर भरती है। हाँ, उसके अपने आप भरने की बजाय उसका इलाज होना चाहिये।

उसका इलाज है सत्संग, स्वाध्याय, कुछ समय के लिये त्यागी और संन्यासी की तरह सोचना, रहना और तीर्थाटन करना। जैसे आप घाव पर मलहमपट्‌टी करते हैं, वैसे ही यह मलहम लगाने के बराबर है। फिर वह जल्दी ठीक हो जाता है। अपने आप भी ठीक हो जाता है, मगर उसमें समय लगता है। अगर उसको जल्दी दूर करना है तो आदमी को अपने वातावरण को बदलना पड़ता है। जब तुम दूसरे वातावरण में जाते हो तो एक ब्रेक होता है। उसी वातावरण में रहते हो तो विचारों की निरन्तरता रहती है और यदि वातावरण को बदलोगे तो एक ब्रेक होता है। ऐसे दो-तीन ब्रेक करने से मलाल चला जाता है। हाँ, याद तो रहती है। हमारा कोई करीबी व्यक्ति मर गया तो क्या याद नहीं रहेगा? स्मृति से उसका लोप नहीं होता। हर एक घटना जो मनुष्य के कम्प्यूटर में चढ़ चुकी है वह तो स्मृति में रहेगी। स्मृति में रहना एक चीज है और शोक होना, विषाद होना दूसरी। स्मृति को नहीं मिटा सकते हो।

यह स्मृति मिटती है शरीर छूटने के बाद, उसके पहले नहीं। परन्तु शोक और विषाद को मिटाना इसलिये जरूरी है कि जब मनुष्य को किसी घटना की वजह से धक्का लगता है तो धक्का मुख्य रूप से दो जगह पर लगता है। वैसे तो कहते हैं शरीर में 76 स्थान हैं जहाँ धक्का लगता है, पर मुख्यत: दो जगह हैं, एक हृदय और दूसरा मस्तिष्क। कई बार जिगर में लगता है, गुर्दे में लगता है, धक्के के 76 मर्म स्थान हैं। कोई भी अति सुख या दु:ख की घटना हो, उसका असर 76 मर्मस्थानों में कहीं पर भी पड़ सकता है। सुख का भी उतना ही असर पड़ता है जितना दु:ख का। फर्क यह होता है कि हमलोग उसको महसूस नहीं करते हैं। मस्तिष्क पर इसका असर पड़ता है। मस्तिष्क इलेक्ट्रोमैग्नैटिक प्रणाली पर चलता है। आप मेरी बात सुन रहे हैं, समझ रहे हैं, सोच रहे हैं, यह सब अन्दर में इलेक्ट्रोमैग्नैटिक क्रिया हो रही है, विद्युतचुम्बकीय क्रिया हो रही है। वैज्ञानिक उसकी फ्रीक्वेन्सी बताते हैं—अल्फा, बीटा, थीटा, डेल्टा। ये अलग-अलग फ्रीक्वेन्सी होती हैं। जब कोई घटना तुम्हारे दिमाग पर चोट करती है तो वहाँ का वोल्टेज कम हो जाता है। सामान्य भाषा में कहते हैं डिप्रेशन या विषाद हो गया।

ऐसी स्थिति में देखते हैं कि विरक्ति होती है, अध्यात्म की ओर आकर्षण होने लगता है।

होना चाहिये। पर यह भी बता दूँ कि वह बहुत दिन तक नहीं चलेगा। घबराने की जरूरत नहीं, तुम साधु-संन्यासी नहीं बनने वाले। किसी के प्रिय की मृत्यु के

बाद विरक्ति होती ही है, होनी चाहिये, क्योंकि अगर प्रकृति इसको उत्पन्न नहीं करेगी तो समस्या आ जायेगी। यह प्रकृति की ऑटोमैटिक उपचार-प्रणाली है। विरक्ति होती है, सब छोड़ देने को मन करता है, किसी चीज में मन नहीं लगता है, सब फालतू चीज है–इसको कहते हैं श्मशान वैराग्य। यह श्मशान वैराग्य स्थायी नहीं होता, कुछ देर के लिए ही होता है। यदि यह न हो तो आदमी फिर बीमार हो जायेगा। यह एक प्रकार से प्राकृतिक उपचार का अंग है। उस समय बहुत मन करता है कि घण्टों बैठकर भगवान का भजन करें, रामायण या भागवत पढ़ते जाएँ, दुकान बन्द करके सत्संग में जाएँ। बहुत अच्छा है, मगर यह ज्यादा दिन रहेगा नहीं। जैसे-जैसे उपचार होते जायेगा फिर कुत्ते की पूँछ वही वापस टेढ़ी-की-टेढ़ी हो जाएगी।

वैराग्य कई प्रकार के होते हैं। एक होता है ज्ञान वैराग्य, जो हमको हुआ। दूसरा होता है प्रसूति वैराग्य। जब स्त्री का बच्चा पैदा होता है उस वक्त उसको बहुत दर्द होता है, उस समय उसके मन में वैराग्य उत्पन्न होता है, मर्द को गाली देती है। पर वह भी थोड़े दिनों के बाद खत्म हो जाता है। तीसरा है श्मशान वैराग्य। अंतिम दो वैराग्य अस्थायी हैं, पर ज्ञान वैराग्य जीवन-भर चलता है, उसके आगे फिर छूटता नहीं। ये अस्थायी वैराग्य जो प्रकृति ने उत्पन्न किए, यह मन पर मलहम लगाने के लिये हैं। यदि न हों तो आदमी पागल हो जायेगा।

स्वामीजी, जैसे मेरी सास मर गई तो किसी ने मेरे पति से कहा कि जो चीज उसकी माँ को अच्छी लगती थी उसका त्याग कर दो, उसकी आत्मा को शान्ति मिलेगी। तो मेरे पति ने सन्तरा और मौसम्बी का त्याग कर दिया, क्योंकि वही उसकी माँ को अच्छा लगता था और मुझे भी खाने का मना कर दिया। क्या यह सही है? उससे आत्मा को शान्ति मिलती है?

ये सब मन को रोगमुक्त करने के लिये हैं। त्याग में कोई झंझट नहीं होता। तुम धन जोड़ो, रिश्तेदारी जोड़ो, मकान बनाओ, जेवर बनाओ, कपड़े बनाओ, जोड़ते जाओ–कितना मुश्किल होता है? पर छोड़ने में तो केवल मन की तैयारी है। इसमें कोई अभ्यास नहीं करना पड़ता। छोड़ने में केवल एक ही चीज है, बस निर्णय लो

और करो। गई हुई आत्मा के लिये जो छोड़ने को कहते हैं वह अपनी जगह उचित है। क्यों? इससे तुम्हारे मन को शान्ति मिलेगी। मन को अगर शान्ति मिलेगी तो उस घटना का तुम्हारे दिल-दिमाग पर जो खराब असर पड़ा है, वह मिटेगा, जैसे घाव मिटता है शरीर में।

देखो, संसार में दो घटनायें बड़ी विचित्र हैं, जिनके बारे में किसी को कुछ समझ में आता नहीं। एक तो है जन्म और दूसरा है मृत्यु। तुम कैसे पैदा हुये, कहाँ से पैदा हुये, कुछ समझ में नहीं आता। कहाँ पर हमको नौ महीने रखा गया, कैसे रखा गया, उसके बारे में जब हम चिकित्सा शास्त्र की किताबें पढ़ते हैं तो दिमाग घूम जाता है। उस छोटे-से भ्रूण के अन्दर ही इतना जबर्दस्त स्नायु-जाल, इतनी धमनियाँ-पेशियाँ, इतने रेशे, इतनी प्रणालियाँ, सारा माया, ममता, मोह, रोग, शोक, हंसना-रोना, जीना, धोखा देना, प्यार करना—यह सब है। कैसे यह सब बन गया? वीर्य की एक बूँद में ढाई अरब कोशिकाएँ होती हैं। उनमें केवल एक कोशिका से तुम बने हो! सारी दुनिया एक कोशिका से पैदा हुई और उस एक कोशिका ने क्या कमाल करके रखा हुआ है, देखो तो सही!

एक तो जन्म आश्चर्य की घटना है, और दूसरी आश्चर्य की घटना है मृत्यु। कहाँ जाते हैं मृत्यु के बाद, कुछ पता नहीं। एक बहुत पुरानी कहानी आती है। वाजश्रवा नाम का एक ऋषि था, उसका एक बेटा था जिसका नाम था नचिकेता। एक दिन उसके बाप ने सोचा कि अब अपनी सारी सम्पत्ति दान में दे दें। सारी सम्पत्ति में गाय आती है, मकान आता है, पैसा आता है और बेटा भी आता है। बेटा बाप की सम्पत्ति है। तो बेटे ने पूछा पिता से, *कस्मै मां दासस्यासि?* तुम मुझे किसको दोगे? बाप चुप रहा। बेटे को क्या कोई दान में देना चाहता है? उसने दुबारा पूछा। फिर कोई जवाब नहीं दिया। उसने जब तीसरी बार पूछा तो बाप को गुस्सा आ गया, कहा, *मृत्यवे त्वा ददामि,* जा तुझे मौत को दे देता हूँ। कहते हैं कि पिता के शब्द के बल पर नचिकेता की मृत्यु हो गई और वह यमलोक पहुँच गया।

जब यमलोक पहुँचा तो यमराज उस समय वहाँ थे नहीं। तीन रात नचिकेता द्वार पर ठहरा। जब यमराज वापस आये तो देखा कि ब्राह्मण पुत्र तीन रात से बाहर ठहरा हुआ है। उनको बहुत दु:ख हुआ, उस जमाने में ब्राह्मण की बड़ी कदर होती थी। यमराज ने कहा, 'देखो, तुम तीन रात यहाँ बिना भोजन-पानी के ठहरे हो, तुम तीन वर माँगो।' नचिकेता ने तब तीन वर माँगे। पहला वर था पंचाग्नि का, जो हम यहाँ करते थे। पंचाग्नि कैसे करते हैं, उसका ईंटा कैसे बनाया जाता है, अग्नि कैसे जलाई जाती है, भस्म कैसे लगाया जाता है, यह सब बताया उन्होंने। दूसरा वर माँगा, 'जब मैं वापस जाऊँ तो मेरे पिता मुझे पहचान जायें।' आखिर मृत्यु के बाद तो कोई पहचानता नहीं दूसरे शरीर में। यमराज ने कहा तथास्तु।

तीसरे वर में नचिकेता ने पूछा, 'कोई कहते हैं कि मृत्यु के बाद कुछ रहता है, माने खतम नहीं होता सब, और कोई कहते हैं कुछ नहीं रहता। आप तो इधर भी रहते हो, उधर भी। जीवन-मृत्यु के दोनों तरफ आप हो, तो बताओ सत्य क्या है?' यमराज ने कहा, 'देख बेटा, ये दो वरदान तो तूने हमसे माँग लिये, हमने दे भी दिये, पर तीसरा वरदान हम नहीं दे सकते, क्योंकि देवता और ऋषि-मुनि भी इस प्रश्न का उत्तर नहीं पा सके हैं। आज तक मृत्यु और मृत्यु के बाद की अवस्था एक टॉप सीक्रेट, गूढ़ रहस्य बनी है, इसलिए मैं नहीं बताऊँगा।' नचिकेता बोला, 'मैं तो आप से यही मांगता हूँ बस।' उन्होंने कहा, 'बेटा, हाथी माँगो, घोड़ा माँगो, सुन्दर स्त्रियाँ माँगो, राज्य माँगो, तुम मुझसे कुछ भी माँगो पर इस प्रश्न का उत्तर मत माँगो।' पर नचिकेता अड़ गया। तब यमराज ने उस प्रश्न का जो उत्तर दिया वह सीधा नहीं दिया। उन्होंने ईश्वर सम्बन्धी विद्या, जिसको ब्रह्म विद्या कहते हैं, उस पर बोलना शुरू किया। शरीर पर, मन पर, जीवात्मा पर, परमात्मा पर बोलना शुरू किया। उन्होंने सीधा नहीं कहा, बल्कि ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया। अन्त में कहते हैं कि नचिकेता को सन्तोष हो गया। यह सारा प्रसंग कठोपनिषद् में है। अगर नहीं पढ़े हो तो जरूर पढ़ना, बहुत अच्छा उपनिषद् है यह। *(क्रमशः)*

–19 मार्च 1998, रिखियापीठ

हम मूर्ख क्यों बने

एक विचारशीला भगवद्भक्ता नारी का एकमात्र पुत्र मर गया। पति घर से बाहर गए थे। उस नारी ने पुत्र का शव ढक दिया और पति के लिए भोजन बनाया। परिश्रम से थके-हारे पति घर लौटे। आते ही उन्होंने पूछा, 'अपने बीमार पुत्र की क्या दशा है?'

स्त्री बोली, 'आज वह पूरा विश्राम कर रहा है। आप भोजन करें।'

पति ने हाथ-पैर धोये और भोजन करने बैठे। पत्नी उन्हें पंखे से वायु करने लगी। पंखा झुलाते हुए वह बोली, 'पड़ोसन ने मुझसे एक बर्तन माँगा था। मैंने उसे बर्तन दे दिया। अब मैं उससे बर्तन माँगती हूँ तो वह बर्तन देना नहीं चाहती, उल्टा रोने-चिल्लाने लगती है।'

पति हँसे, 'बड़ी मूर्खा है वह! दूसरे की वस्तु लौटाने में रोने का क्या काम?' अब तक वे भोजन समाप्त कर चुके थे। उन्हें हाथ धुलाते हुए स्त्री बोली, 'स्वामी! अपना लड़का भी तो अपने पास भगवान की धरोहर ही था। प्रभु ने आज अपनी वस्तु ले ली है तो इसमें रो-चिल्लाकर हम मूर्ख क्यों बनें।'

पति ने गम्भीरतापूर्वक पत्नी की ओर देखा, फिर धीरे से कहा, 'तुम ठीक कहती हो देवि!'

सत्यम् ज्योति

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

हमारे गुरु, श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती का जन्म मार्गशीर्ष पूर्णिमा के दिन हुआ था। यह ऐसी पूर्णिमा है जो हमारे योगेश्वर श्री कृष्ण को अत्यन्त प्रिय है। गीता में उन्होंने कहा भी है, *मासानां मार्गशीर्षोऽहं*–मासों में मैं मार्गशीर्ष महीना हूँ। यह जो पूरा समय है मार्गशीर्ष का, यह भगवान श्री कृष्ण को अत्यन्त प्रिय है, पूर्णिमा तो और भी अधिक, क्योंकि यह इस मास की पूर्णता को दर्शाती है। इस दिन को हमलोग योग पूर्णिमा के रूप में मनाते हैं। इतिहास साक्षी है कि हमारे गुरुजी के जीवन में योग का पूर्ण चन्द्र उदित हुआ और वे इस मानव शरीर में रहते हुए भी परम तत्त्व से एकाकार हो गए। योग पूर्णिमा की यह आराधना और यह अवसर उनकी स्मृति, शिक्षाओं और जीवन को समर्पित है। उनके जीवन की पूर्णता को जानना और उससे प्रेरणा लेकर धर्म के मार्ग पर आगे बढ़ना, यह अपने प्रति, ईश्वर के प्रति और मानवता के प्रति हमारा कर्त्तव्य है।

रिखिया में श्री स्वामीजी ने बीस साल बिताये और यहाँ पर उन्होंने जो संस्कार, जो ऊर्जा छोड़ी है, उसके साक्षी आप सब हैं। उन्होंने यहाँ पर सभी के उत्थान एवं उद्धार हेतु जिस संकल्प को प्रज्ज्वलित किया है वह सेवा, प्रेम, दान और आत्मभाव का है। उन्होंने इस स्थान का नाम दिया है रिखियापीठ, मंत्र दिया है *नमो नारायण*, और साथ ही संहिता, उपनिषद् एवं परम्परा भी दी है। उन्होंने लोगों के लाभ हेतु

यहाँ पर एक पूर्ण वृक्ष को तैयार किया है। यह है अपना रिखियापीठ जो उनकी तपोभूमि है, और समाधि भूमि भी है, अन्तिम तीर्थ जिसको कहते हैं।

रिखिया आने के पूर्व वे अपने गुरु द्वारा निर्देशित दूसरे कार्यों में संलग्न थे। उन कार्यों की पूर्ति हेतु भी उन्होंने बीस साल का समय व्यतीत किया। उन कार्यों का केन्द्र रहा मुंगेर, जहाँ पर आज विश्व योगपीठ स्थापित है। उनकी उस कर्मभूमि का मंत्र है *हरि: ॐ तत्सत्*। उसकी भी संहिता है, उपनिषद् है जो गुरुजी ने प्रदान किया है। मुंगेर में ही हमारे गुरुजी का तीसरा केन्द्र बना है संन्यास पीठ। नाम भी उन्हीं का दिया हुआ है, *जय हो* मंत्र भी उन्हीं का दिया हुआ है। उपनिषद्, संहिता आदि सब उनका दिया हुआ है।

रिखिया आने के पूर्व जब वे मुंगेर में थे तो वे विश्व में योग के प्रचारक के रूप में जाने गये, एक महायोगी के रूप में जाने गये। जब रिखिया आये तो एक सिद्ध, एक तपस्वी के रूप में जाने गये। जब मुंगेर में थे तो उनका जीवन शिष्यत्व की पराकाष्ठा था। शिष्य के लिये अपनी महत्त्वाकांक्षाओं का त्याग करना बहुत कठिन है। महत्त्वाकांक्षा ही तो हर व्यक्ति के जीवन का आधार बनती है। अगर अपने जीवन से महत्त्वाकांक्षा हटा दो तो क्या शेष रहता है? कुछ नहीं। पर श्री स्वामीजी ने अपने जीवन से सभी महत्त्वाकांक्षाओं को हटाया। ऐसा उनका जीवन रहा। सभी महत्त्वाकांक्षाओं को हटाकर, एक लक्ष्य को अपने जीवन में अपनाकर उस लक्ष्य की पूर्ति हेतु बढ़ चले और अपने पथ से कभी भी दिग्भ्रमित नहीं हुये।

मुंगेर को अपने योग प्रचार और प्रसार का केन्द्र बनाकर उन्होंने विश्व में अनेकों यात्राओं के माध्यम से, जिनमें बहुत-सी यात्राओं में स्वामी सत्संगी जी ने साथ दिया, हर देश में जाकर योग का झंडा गाड़ा, चाहे वह ईसाई देश हो या इस्लामी या बौद्ध या साम्यवादी या पूँजीवादी। महर्षि शाण्डिल्य या पतंजलि जैसे मनीषी संसार में प्रचलित हुये अपनी विद्या के कारण, लेकिन हमारे गुरुजी संसार में प्रचलित हुये अपने परिश्रम के कारण। उनका परिश्रम अपने जीवन में अपने गुरु के आदेशों को पूर्ण करना रहा। उनका वही एक संकल्प था, वही एक चिंतन था। अपने लिये कोई अन्य चिंतन नहीं था, इतना भी नहीं कि शाम की रोटी मुझे कहाँ मिलेगी। हमने अपने गुरुदेव को अपने बारे में सोचते तो कभी

देखा ही नहीं है, और पचास साल उनके साथ व्यतीत किये हैं। हमलोग कहीं जाते थे तो चिन्ता करते थे कि कहाँ बैठेंगे, आसन ले चलो, यह ले चलो, वह ले चलो। लेकिन वे तो परमहंस थे। अगर धरती पर बैठते तो धरती पवित्र हो जाती, और वे धरती पर ही बैठा करते थे। उनके स्पर्शमात्र से धरती माँ आह्लादित हो जाती थीं, वे धरती के सुपूत जो थे।

विश्व में उन्होंने भारतीय संस्कृति के आधार-स्तम्भ, योग का झण्डा गाड़ा है। आज संसार में लोग योग को एक शारीरिक विधि के रूप में देख रहे हैं, लेकिन हमारे गुरुदेव ने योग को एक संस्कृति, एक साधना और एक विद्या के रूप में प्रचलित किया। संस्कृति, साधना और विद्या–जब इन तीनों का समावेश होता है तब मनुष्य के जीवन में स्थायी संस्कारों का निर्माण होता है, और वे स्थायी संस्कार मनुष्य को अपनी पशुता से उबरकर परमतत्त्व के प्रकाश में आने के लिये प्रेरित करते हैं। यह कार्य हमारे गुरुजी ने मुंगेर विश्व योगपीठ से सम्पन्न किया और उपलब्धि के सर्वोच्च शिखर को प्राप्त भी किया। घर-घर में, स्कूल-कॉलेज में, विश्वविद्यालयों में, क्लबों में–चारों तरफ स्वामी सत्यानन्द की योग शिक्षा का नाम गूंज उठा और आज भी गूंज रहा है।

लेकिन हमारे गुरुदेव, स्वामी सत्यानन्द जी इन सब तिकड़मों में फँसने वाले नहीं थे। उनके जीवन का उद्देश्य यह नहीं था। वे ऋषिकेश गये थे गुरु की खोज में। जरा कल्पना करो, सन् 1943 का समय, गंगा किनारे एक साधु बैठे हैं। वे हैं हमारे परमगुरु, स्वामी शिवानन्द जी। एक नवयुवक उनके सामने पहुँचता है और उनके चरणों में अपना शीश रखता है। वे हैं हमारे गुरुदेव, स्वामी सत्यानन्द जी जो पहली बार अपने गुरु, श्री स्वामी शिवानन्द जी का दर्शन कर रहे हैं और उनके चरणों में अपना शीश समर्पित कर रहे हैं। उस क्षण के बारे में हमारे गुरुदेव बतलाते हैं कि 'जब मैंने अपने गुरुदेव, स्वामी शिवानन्द जी के चरणों में अपना शीश रखा तो पाया कि मेरे भीतर कोई विचार नहीं, कोई अपेक्षा नहीं, कोई प्रश्न नहीं, कोई उथल-पुथल नहीं थी, बल्कि मुझे पूर्ण शान्ति का अनुभव हुआ। उस पूर्ण शान्ति के अनुभव में मुझे यह ज्ञात हो गया कि जिसकी खोज मुझे थी, अपने उस आराध्य को मैंने आज प्राप्त कर लिया है और अब कुछ पाने के लिये शेष नहीं है।' यह भाव उनके जीवन में अन्त तक रहा, चाहे वे राष्ट्राध्यक्षों के साथ राजमहलों में रहे या रिखिया की धूल में ग्रामवासियों के साथ एक वैरागी के रूप में रहे। उनकी चेतना हमेशा गुरुतत्त्व से जुड़ी रही।

ऐसे सुन्दर प्रथम मिलन के बाद श्री स्वामीजी स्वयं को अपने गुरुदेव, स्वामी शिवानन्द जी की सेवा में लगा देते हैं और उनके आश्रम में हर प्रकार का कार्य करते हैं। आजकल का साधु तो आराम खोजता है, सोना चाहता है। एक सोना होता है आभूषण वाला और दूसरा होता है बिस्तर में सोना। आज का साधु दोनों की

कामना करता है। लेकिन स्वामी शिवानन्द जी के समय दोनों तरह का सोना दूर की बात थी। केवल एक उद्‌देश्य, एक लक्ष्य, एक प्रेरणा जो हमारे भीतर ज्वलंत है, उसकी ऊर्जा को बनाये रखना–ऐसा जीवन जीया हमारे गुरुजी ने ऋषिकेश में। पत्रिका के लिए लेखन, टंकण, सम्पादन आदि हर कार्य में निपुण थे, व्यवस्थापक के रूप में आश्रम के हर विभाग को देखने का सामर्थ्य, क्षमता और स्पष्टता थी उनमें। उन्होंने हर प्रकार का कार्य किया, सचिव का भी काम किया और मेहतर का भी। कभी शिकायत नहीं की, यह नहीं कहा कि बहुत हो गया अब, मुझे कुछ प्राप्त नहीं हुआ, न सत्संग, न शिक्षा, न साधना।

सामान्य व्यक्ति गुरु से कभी एकाकार नहीं हो पाता है, उसके मन में हमेशा अपेक्षाएँ होती हैं कि गुरुजी मुझे कोई तरीका बतायें, साधना बतायें जिससे मैं मोक्ष को प्राप्त करूँ। ऐसे कुछ चेले हमारे भी हैं, जो हर बार हमें देखकर कहते हैं कि कोई साधना बतायें। जो बताये हैं उसे उन्होंने किया भी नहीं है। हर व्यक्ति की कामना होती है कि मैं अपने मोक्ष के लिये कुछ करूँ, पर श्री स्वामीजी कहते थे कि मुझे मोक्ष की कामना नहीं है। हर व्यक्ति जीवन में आराम और सुख पाने के लिए काम करता है, लेकिन श्री स्वामीजी कहते थे कि जब तक तुममें सामर्थ्य है, जिस कार्य के लिये स्वयं को समर्पित किया है, उसे सिद्ध करने के लिये अपना तन, मन, विचार, प्राण सब एक कर दो।

सबेरे से शाम तक वे खुद आश्रम के सभी कार्यों को व्यवस्थित करने में संलग्न रहते थे। स्वामी शिवानन्द जी के सत्संग में उन्हें बुलाया जाता था क्योंकि उनकी

फोटोग्राफिक मेमरी थी, विलक्षण स्मृति-शक्ति थी। उस समय तो टेपरिकॉर्डर होते नहीं थे। श्री स्वामीजी स्वामी शिवानन्द जी के सत्संग का श्रवण करते थे, उसके बाद टाईप-राइटर के सामने बैठते थे और अपनी विलक्षण स्मृति में जो सब अंकित किया गया उसे कागज पर टाईप करते थे। सत्संग अंग्रेजी में होता था, उसे हिन्दी में अनुवाद भी करते और दोनों प्रतिलिपियों को प्रात:काल चार बजे स्वामी शिवानन्द जी की मेज पर रख देते थे। उसके बाद कुछ देर के लिये नित्य-कर्म आदि के लिये जाते थे। सोते कब थे, मालूम नहीं। अपने गुरुदेव को साक्षी मान कर यह बात आपसे कह रहा हूँ कि मैंने उन्हें सोते नहीं देखा है। किसी भी समय उठो, वे हमेशा जागृत रहते थे। चाहे मध्यरात्रि के समय उठो, चाहे एक बजे या दो बजे या तीन बजे, आश्रम के किसी भी संन्यासी ने उन्हें निद्रा की स्थिति में आज तक नहीं देखा है। उन्होंने हर क्षण का सदुपयोग किया है।

उनके जीवन में किसी के विरोध में या किसी के प्रति कटु विचार या भाव कभी नहीं आया है, यह मैं शपथपूर्वक कहता हूँ। उन्होंने सबका हित सोचा है, उस साधु की तरह जो बिच्छू के सौ डंक सहकर भी बिच्छू को पानी से बाहर सूखी धरती पर निकालने के लिये प्रयत्नशील रहे। यह कहानी नहीं मालूम है? एक तपस्वी साधु नदी में स्नान कर रहे थे। पानी में एक बिच्छू को डूबते देखा तो उसे हाथ में उठाया और किनारे लाने लगे। बिच्छू भयभीत था, उसने डंक मारा। साधु का हाथ हिला और बिच्छू पानी में गिर गया। फिर उस साधु ने बिच्छू को उठाया, घबराहट में बिच्छू ने फिर डंक मारा, हाथ हिला, बिच्छू पुन: पानी में गिर गया। यह क्रम कुछ देर तक इसी तरह चलता रहा, तो भी साधु ने अपने स्वभाव को छोड़ा नहीं। आस-पास के लोगों ने उनसे कहा, 'बिच्छू आठ-दस डंक तो मार चुका है, जितनी बार उठाओगे, हर बार मारते रहेगा। छोड़ दो उसको उसके भाग्य पर।' साधु ने कहा, 'नहीं, बिच्छू अपने स्वभाव से लाचार है, तो मैं भी अपने स्वभाव से लाचार हूँ।'

यह हमारे गुरुदेव के भी जीवन का सत्य है। उनके हर प्रकार के शिष्य थे, कोई स्वार्थी, कोई समर्पित, कोई विनम्र, कोई अभिमानी, कोई कुटिल, कोई चंचल, कोई शान्त, कोई मोटा तो कोई खोटा। वे कहते थे कि चिंगारी हर व्यक्ति में विद्यमान है, केवल उस चिंगारी के चारों तरफ मकड़ी का जाल है, धुंधलापन है, अंधियारा है। यह अंधियारा जीवन के दोषों का है, कुकर्मों का है, पर उन सबको अनदेखा करके मैं उस चिंगारी को प्रकट करने के लिये प्रयास करता हूँ। कुकर्म करने वालों को भी उन्होंने आगे बढ़ने की प्रेरणा दी। जिसने स्वीकार किया उसके जीवन का उद्धार हुआ, और जो अपने अहंकार के वश में था उसके जीवन का स्वत: पतन हुआ।

हमारे गुरुदेव का स्वभाव ऐसा था कि व्यक्ति के दोष को नहीं, बल्कि उसके गुण को, उसकी प्रतिभा को, उसके भीतर स्थित ईश्वर को देखते थे, और उस ईश्वर को वे एक अवसर प्रदान करके, एक मार्ग प्रदान करके जागृत किया करते

थे। जो मकड़ी के जाल में फंसा हुआ मन है वह मुक्त हो जाए और अपने जीवन में उस परमतत्त्व की अनुभूति कर सके जहाँ पर शान्ति है, सुख है, आनन्द है, समृद्धि है। यही उनकी योग शिक्षा का आधार रहा था जिसका श्रीगणेश उन्होंने मुंगेर में किया। मुंगेर आज विश्व में योग विद्या का सबसे ऊँचा स्मारक है क्योंकि उसके आधार हैं हमारे गुरुदेव और अपने गुरु, श्री स्वामी शिवानन्द जी के प्रति उनका समर्पण।

लोगों के मन में विचार आता है कि मैंने सब कुछ किया, पर उनके मन में कभी ऐसा भाव नहीं था कि मैंने यह सब किया है। अगर ऐसा भाव रहता तो वे मुंगेर नहीं छोड़ते, रिखिया नहीं आते। वे हमेशा कहते थे कि 'गुरुजी ने आदेश दिया और मैं उसको पूरा करने का प्रयास कर रहा हूँ। उन्होंने कहा कि तुम योग का प्रचार करो, मैं कर रहा हूँ। अगर मुझ से पूछोगे कि मैं क्या चाहता हूँ तो वह बात अलग है, लेकिन मैं अभी गुरुजी का काम कर रहा हूँ।' अपनी सभी इच्छाओं और महत्त्वाकांक्षाओं को तिलांजलि देकर गुरु-वाक्य को सिद्ध करने के लिये अथक परिश्रम किया और उस उपलब्धि को गुरु चरणों में समर्पित करके कहा, 'अब मैं अपने वचन से मुक्त हो गया। आपने जो आदेश दिया था, उसे मैंने पूरा कर दिया, अब मैं चलता हूँ आपके दूसरे आदेश के पालन हेतु।'

दूसरा आदेश कौन-सा था? जब स्वामी सत्यानन्द जी को ऋषिकेश में संन्यास की दीक्षा मिल रही थी तब उन्होंने स्वामी शिवानन्द जी से प्रश्न किया था कि संन्यास के बाद मुझे क्या करना होगा। स्वामी शिवानन्द जी ने कहा था, 'जो अभी तक करते आये हो उन सभी कार्यों को भली-भांति सम्पन्न करते जाना है।

उसमें कोई परिवर्तन नहीं है। जो तुमने आज तक किया है, गुरु के लिये, दूसरों के लिये, संस्था के लिये, उन सब जिम्मेदारियों को निभाते जाना है। किसी को छोड़ना नहीं है, किसी का त्याग नहीं करना।' श्री स्वामीजी ने कहा, 'लेकिन मैं तो आश्रम बनाना या संस्था स्थापित करना नहीं चाहता हूँ। वह तो मेरी इच्छा है ही नहीं। मैं तो संन्यास जीवन जीना चाहता हूँ, एक स्वतंत्र और उन्मुक्त जीवन जीना चाहता हूँ– *मैं उन्मुक्त गगन का पंक्षी, मैं अजस्र अमृत की धारा। मैं वेदों का मित्र इन्द्र हूँ, मैं हूँ ब्रह्मा देव सनातन। पूजा किसकी नीराजन किसका, मेरा मेरा मेरा।* उस परमतत्त्व की आराधना में संन्यासी जो करता है मैं उसमें संलग्न होना चाहता हूँ। संन्यास का जो लक्ष्य है, उद्‌देश्य है, उसकी अनुभूति में लीन होना चाहता हूँ। उस तत्त्व से एकाकार होना चाहता हूँ जो इस जीवन का प्रयोजन है।'

स्वामी शिवानन्द जी ने कहा, 'बेटा, उसके लिये तुम्हें रुकना पड़ेगा। अगर तुम स्टेशन पर जल्दी पहुँच जाते हो और ट्रेन के आने में एक-दो घंटे का समय है, तो तुम क्या करते हो? प्लेटफॉर्म पर घूमते हो, अन्य यात्रियों से मित्रता करते हो, किसी के साथ चाय पीते हो, किसी के साथ कुरकुरे खाते हो, किसी के साथ अखबार और राजनीति पर बात करते हो। दो-तीन घंटे का समय बीत जाता है और ट्रेन जब आती है तब उस पर तुम चढ़ जाते हो और अपनी यात्रा पूरी करके अपने लक्ष्य तक पहुँच जाते हो। अपनी आध्यात्मिक यात्रा में तुम जल्दी आ गये हो, सबसे पहले अपने जीवन के कर्मों का क्षय करना आवश्यक है। इसलिए तुम्हें एक आदेश देता हूँ–योग का प्रचार करो नगर-नगर, डगर-डगर, घर-घर, द्वार-द्वार, समुद्र पार विश्व को योगमय बना दो। जिस दिन तुम विश्व को योगमय बना दोगे उस दिन जानना कि तुम्हारे जीवन के कर्म समाप्त हो गये हैं।'

श्री स्वामीजी ने कहा, 'गुरुदेव, मुझे तो योग आता ही नहीं है। मैंने तो सबेरे से रात तक केवल सेवा की है। न आसन, न प्राणायाम, न जप, न ध्यान, न तप, कुछ नहीं किया।' स्वामी शिवानन्द जी ने कहा, 'तुमको वह करने दिया ही नहीं। अगर वह तुम्हारे जीवन की आवश्यकता होती तो मैं स्वयं तुमसे कहता कि सत्यानन्द! सब काम छोड़ो, झाड़ू छोड़ो, क्लास में जाओ। लेकिन तुम्हारी वह आवश्यकता है ही नहीं। कर्मयोग के द्वारा तुम स्वयं में शुद्ध हुये हो, पवित्र हुये हो, स्थिर हुये हो। सेवा के द्वारा तुम्हारे भीतर की ज्योति प्रकाशित हुई है। तुम चलो मेरे साथ।' और पाँच मिनट में उन्हें शक्तिपात देकर सत्यानन्द को शिवानन्दमय बना दिया!

गुरुदेव को अपने भीतर प्राप्त कर श्री स्वामीजी चल पड़े ऋषिकेश से। जिस प्रकार हनुमान जी के दिल में श्रीराम और सीताजी की छवि हमेशा रहती थी और वे छाती फाड़कर कभी भी उस दिव्य स्वरूप का दर्शन करा सकते थे, उसी प्रकार हमारे गुरुजी अपने हृदय में अपने गुरुदेव, श्री स्वामी शिवानन्द जी की छवि को, उनके दिये गये संकल्पों, शिक्षाओं और संस्कारों को धारण करके संसार में

निकल पड़े। नौ साल तक भारत का भ्रमण किया, गाँव-गाँव गए। जो काम आप यहाँ देखते हो, वह उन्होंने गाँव-गाँव जाकर भी किया है। गाँवों के उत्थान और विकास में उस समय खूब सहयोग दिया है जब वे स्वतंत्र परिव्राजक के रूप में भारत-भ्रमण किया करते थे। डाकुओं से सामना हुआ है, मृत्यु से सामना हुआ है, लेकिन निर्भय होकर उन सब को सन्मार्ग पर लाकर, उनसे गुरु-दक्षिणा लेकर आगे बढ़े हैं। एक घटना के साक्षी तो हम स्वयं हैं। एक जमाना था जब मुंगेर से पटना की यात्रा करना खतरे से खाली नहीं था। बख्तियारपुर का जो जंक्शन है वहाँ पर तो प्रतिदिन अनेक ट्रकों की लूटपाट होती ही थी। वहाँ पर एक दिन डाकुओं से सामना हुआ। गुरुदेव के साथ गाड़ी में हम भी थे। लेकिन डाकू भी गुरुदेव के चरणों में गिर पड़े और सारा धन लौटाकर, दक्षिणा देकर, ऐसा काम फिर नहीं करने का वचन देकर, बीस मिनट के भीतर सबको जाने दिया। मतलब ऐसा था उनका तेज, प्रताप, बल, ऐश्वर्य और वीर्य!

जो अपने गुरु की शक्ति से युक्त होकर गुरु के वचनों को सिद्ध करने के लिये, अपनी इच्छाओं को तिलांजलि देकर, सत्य और धर्म के ध्वज को फहराकर अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष के चार पहिये वाले रथ पर बैठकर संसार में बढ़ चला है, वह तो निश्चित रूप से दिग्विजयी होता है। योग के क्षेत्र में स्वामी सत्यानन्द जी ने दिग्विजय प्राप्त की और उसकी पूर्णता होती है रिखिया में जब दस वर्षों तक यहाँ पर राजसूय यज्ञ सम्पन्न हुआ था। उस राजसूय यज्ञ में रिखियापीठ की नींव पड़ी, रिखियापीठ को एक उद्देश्य मिला, लक्ष्य मिला, संस्कार मिला, शक्ति मिली, और आप सब उसके साक्षी हैं। ऐसे गुरुदेव जिन्होंने हमेशा अपने जीवन में समर्पण, सकारात्मकता और सत्यभाव को स्थान दिया है, वे ही सत्यानन्द कहलाते हैं। जय हो!

—2 दिसम्बर 2017, योग पूर्णिमा महोत्सव, रिखियापीठ

कल्पतरु की छाँव में

कृपया ॐ की विवेचना करें। इसका सही उच्चारण कैसे करें? शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से प्रणवोच्चारण का क्या महत्त्व है?

लोग उच्चारण के अनेक तरीके बतलाते हैं, लेकिन उनमें सर्वमान्य तरीका है–तीन चौथाई 'ओ' और एक चौथाई 'म' का उच्चारण। सबसे उपयोगी इसी को मानते हैं, क्योंकि अन्य प्रकार के जो उच्चारण होते हैं, वे योग-साधना में विभिन्न अवस्थाओं को प्राप्त करने के लिए किए जाते हैं। योग में बहुत-से ऐसे अभ्यास हैं जिनमें क्षणमात्र के लिए 'ओ' बोलते हैं, बाकी पूरे समय 'म' बोलते हैं। बहुत-से अभ्यास है जिनमें 'अ', 'उ' और 'म', तीनों को अलग-अलग बोला जाता है। यह तो साधना और अभ्यास पर निर्भर है।

ॐ के धार्मिक महत्त्व को ही प्राय: अधिक समझाया जाता है, इसके शारीरिक और मनोवैज्ञानिक असर को लोग जानते नहीं। धार्मिक दृष्टिकोण से लोग कहते हैं कि यह परमात्मा का प्रतीक है, ब्रह्मा, विष्णु, महेश–तीन देवों का प्रतीक है, इत्यादि-इत्यादि। चाहे जो हो, सभी शास्त्र और मत एक बिन्दु पर सहमत होते हैं कि ॐ की ध्वनि परम तत्त्व का प्रतीक है, परा-ध्वनि का प्रतीक है, जिसे सन्तों ने अपनी भाषा में अनहत नाद कहा है। यह अनहत नाद मूल स्पन्दन का प्रतीक है जिससे सृष्टि की उत्पत्ति होती है। अगर आप एक सूक्ष्मदर्शी से अणु के भीतर देखेंगे तो उसके मध्य में नाभिक या शक्ति का केन्द्र दिखालाई पड़ेगा। नाभिक या शक्ति केन्द्र की वह अवस्था स्थिर नहीं है। उस शक्ति में स्पन्दन है, स्फुरण है, और जहाँ पर स्पन्दन है, स्फुरण है, वहाँ पर ध्वनि का होना अनिवार्य है।

अगर आप हाथ को हवा में हिलाते हैं, तो उस समय भी एक घर्षण-ध्वनि की उत्पत्ति होती है, जो आपको सुनाई नहीं पड़ती, क्योंकि कानों की अपनी एक श्रवण-सीमा होती है। उसके ऊपर या नीचे की जितनी ध्वनियाँ होती हैं, या जो पराध्वनि होती है, वे सुनायी नहीं पड़तीं। ठीक इसी प्रकार से अणु के मध्य में शक्ति का जो केन्द्र है, जहाँ स्पन्दन क्रिया हो रही है, वहाँ भी एक ध्वनि है। अगर उस ध्वनि को सुनने में हम सक्षम हो जाएँ, तो वह गुंजन के रूप में हमें सुनाई पड़ेगी। अगर इस गुंजन के स्वर को आप व्यक्त करना चाहेंगे तो अकार, उकार और मकार, इन तीन अक्षरों की सहायता लेनी पड़ेगी। इस प्रकार ॐ को योगियों ने सृष्टि का मूल मंत्र माना है, नाद माना है। *'बिन्दुनादकलातीत: तस्मै श्री गुरवे नम:'* यहाँ जिस नाद शब्द का प्रयोग किया गया है वह ॐ को दर्शाता है। वही नाद है, जिसके अनुभव से कला की उत्पत्ति होती है और कला की उत्पत्ति के पश्चात् सामर्थ्य और शक्ति की उत्पत्ति होती है।

यह तो ॐ का यौगिक अर्थ रहा। कुछ बुद्धिजीवी और मनीषी ॐ के विभिन्न अक्षरों का सम्बन्ध त्रैत अवस्था से, त्रिदेवों से, सृजन-पालन-संहार क्रिया से, या चेतना के विभिन्न आयामों–जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति से जोड़ते हैं। हो सकता है कि ये चर्चाएँ ॐ के विभिन्न रूपों को समझाने के लिए होती हों, पर सामान्य रूप से यह स्वीकार करना चाहिए कि जो स्पन्दन क्रिया हमारे शरीर के सूक्ष्म अणुओं के भीतर हो रही है, उसका स्वरूप है ॐ।

जहाँ तक इसके शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक महत्त्व का प्रश्न है, यह कहा जा सकता है कि इसके उच्चारण से उत्पन्न ध्वनि से हमारे शरीर के तंत्र-तंत्रिकाओं में और मस्तिष्क के भीतर उत्पन्न विद्युत तरंगों में परिवर्तन होते हैं। ॐ के उच्चारण से व्यक्ति के भीतर के भय ओर घबराहट को दूर किया जा सकता है और मस्तिष्क में तनाव के कारण नाड़ी संस्थान में जो उत्तेजना उत्पन्न हो जाती है उससे भी मुक्ति पायी जा सकती है। शारीरिक, मानसिक, विचारात्मक और भावनात्मक उत्तेजना को शान्त करने के लिए ॐ का उच्चारण महत्त्वपूर्ण है। प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है।

बिहार योग विद्यालय के प्रतीक में 'हं', 'ॐ' और 'क्षं' क्यों हैं?

जितनी संस्थायें या विचारधारायें होती हैं, वे अपने मूल विचार को एक प्रतीक के रूप में व्यक्त करती हैं। बहुत-से मत या संस्थायें एक कमल या हंस का चिह्न बनाती हैं। सब प्रतीकों के पीछे उनका एक सिद्धान्त छुपा हुआ है। आज्ञा चक्र का प्रतीक योग का प्रतीक है। बिहार योग विद्यालय ने योग के इस प्रतीक को अपना प्रतीक माना है, क्योंकि यह एक योग केन्द्र है।

आज्ञा चक्र मनुष्य-जीवन के एक ऐसे क्षेत्र, एक ऐसी अवस्था का प्रतीक है जहाँ पर वह अपने मन को पार करके ब्रह्माण्डीय चेतना में प्रवेश करता है, सीमित अवस्था को पार करके परम सत्ता से अपना सम्बन्ध जोड़ता है। कुण्डलिनी योग के अध्ययन से आपको मालूम पड़ेगा कि आज्ञा चक्र को गुरु का केन्द्र माना गया है। गुरु उस सत्ता को कहते हैं जो हमारे भीतर से अज्ञान को, अविद्या को दूर कर सके। आजकल लोग गुरु की व्याख्या बहुत सीमित ढंग से करते हैं। बनारस में जाइए तो 'क्यों गुरु' यह एक आम शब्द है, लेकिन वास्तव में गुरु का आध्यात्मिक अर्थ होता है, जो मनुष्य की चेतना से अविद्या और अज्ञान के पर्दे को हटाकर, उसके भीतर आत्म तत्त्व के प्रकाश का अनुभव जगाए।

आत्म-तत्त्व की अनुभूति आज्ञा चक्र में होती है, क्योंकि इसके पूर्व के जितने भी चक्र होते हैं, वे पंच तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिन्हें हम पंच महाभूत कहते हैं। आज्ञा चक्र मानव चेतना का प्रतिनिधित्व करता है और सहस्रार चक्र ब्रह्माण्डीय चेतना का। पंच तत्त्वों को पार करने के पश्चात् जब चेतना की शुद्ध और निर्मल स्थिति की अनुभूति होती है, जब सभी प्रकार के विकारों का नाश हो जाता

है, जब अन्दर का बर्तन साफ हो जाता है, कचरे से भरा नहीं रहता, तभी जीवन में परम तत्त्व की अनुभूति होती है और उस परम तत्त्व का प्रतीक पुन: आज्ञा चक्र में ॐ मंत्र है। उसके साथ दो मंत्र और हैं– 'हं' और 'ठं' या 'क्षं'। 'हं' और 'क्षं' मंत्र क्रमश: सूर्य शक्ति अर्थात् प्राण शक्ति और चन्द्र शक्ति यानी चित्त शक्ति के प्रतीक है। प्राण शक्ति का अर्थ होता है बहिर्मुखी जगत् और चित्त शक्ति का अर्थ होता है अन्तर्मुखी जगत्। अत: बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी जगत् में जहाँ सामंजस्य हो और दोनों अनुभूतियाँ एक हो जायें, और जिस अवस्था में अविद्या हमारे भीतर से मिटे, वह स्थिति आज्ञा चक्र की रहती है। वह चक्र गुरु का केन्द्र है और योग के इस प्रतीक को हमलोगों ने अपने चिह्न के रूप में अपनाया है।

पुस्तकों में चक्रों की जो आकृतियाँ दी गयी हैं, वे काल्पनिक हैं या यथार्थ?

देवताओं के जितने चित्र होते हैं, वे काल्पनिक हैं या यथार्थ? इस प्रश्न का जवाब दे दीजिए, आपको अपने प्रश्न का जवाब मिल जाएगा। दोनों पक्ष होते हैं। काल्पनिक इसलिए कि न राम को किसी ने देखा है, न कृष्ण को। उस समय कैमरा भी नहीं था कि चित्र ले सकें। लेकिन हम हमेशा एक ही रूप में उन्हें देखते हैं। चाहे जो कलाकार हो, एक ही रूप में उनकी कल्पना करता है। राम जी को हमेशा धनुष हाथ में लिए, सीता और लक्ष्मण के साथ चित्रित किया जाता है। हनुमान, कृष्ण, बुद्ध–सबको एक ही रूप में चित्रित किया जाता है। यह चित्रण सत्य है या कल्पना? प्रारम्भ में कल्पना है, लेकिन जब आप उस छवि को मन में निहारते जाते हैं तो वही छवि भीतर में प्रकट हो जाती है। तब उसका क्या रूप है, काल्पनिक? नहीं, यथार्थ।

प्रतीक टाइम बम की तरह होते हैं जो एक समय आने पर विस्फोट करते हैं, और उस समय आपको वह छवि दर्शन के रूप में, साक्षात्कार के रूप में या प्राप्ति

के रूप में दिखाई देती है। वह एक अनुभूति का रूप धारण करती है। ठीक यही उत्तर है चक्रों के बारे में। चक्रों का कोई फोटो तो लिया नहीं गया है और अगर आप अपने शरीर को काट-पीट कर भी चक्र देखना चाहेंगे और खोजेंगे कि वह छोटा-सा साँप हमारे भीतर है या नहीं, या छोटा-सा कमल हमारे भीतर है या नहीं, तो वे कभी मिलने वाले हैं नहीं। लेकिन जब आपकी चेतना उस प्रतीक पर पूर्ण रूप से केन्द्रित हो जाती है तब उस प्रतीक के गुण, क्षमता एवं शक्ति की ही चेतना निरंतर बनी रहती है और वह एकाग्रचित्त अवस्था उस केन्द्र की शक्ति को जाग्रत करती है।

इस तरह चक्रों का चित्रण काल्पनिक भी है और यथार्थ भी। विशेषता तो यह है कि हजारों वर्ष पूर्व भी देश के विभिन्न प्रान्तों में योगियों ने एक ही दृश्य को देखा, चाहे ऋषि घेरण्ड हों या महर्षि पतंजलि हों या योगी स्वात्माराम हों। वे पड़ोसी नहीं थे कि अपनी अनुभूतियों की परस्पर तुलना कर सकें। सैकड़ों वर्षों का अन्तराल रहा है इन लोगों के बीच। देश के विभिन्न प्रान्तों में जन्म हुआ, लेकिन जब ध्यान की एक अवस्था को प्राप्त करते हैं तो ठीक वही दृश्य, वही अनुभूति उनके सामने प्रकट हो जाती है, और उसको वे वही रूप देते हैं। ऐसा भी नहीं कि उस समय किताबें छपती थीं और किसी ऋषि ने किसी दूसरे योगी की किताब पढ़कर अपने चेलों को वही बतला दिया। पहले जमाने में तो नकल करने का कोई प्रावधान ही नहीं था। पहला जमाना क्या, पचास साल पहले भी भारत में वह स्थिति नहीं थी। लोग तीर्थयात्रा पर जाते थे तो अपना अन्तिम संस्कार वगैरह करवा लेते थे कि पता नहीं मैं लौटकर वापस आऊँगा कि नहीं। इतने बीहड़ जंगल, भयानक पशु, पैदल यात्रा—सालों लग जाते थे।

इस बात को अच्छी तरह समझ लीजिए कि ध्यान की स्थिति में सबको एक ही अनुभूति प्राप्त होती है। अगर आप ध्यान की उच्च अवस्था को प्राप्त करते हैं तो वहाँ पर आपको जो अनुभव होगा, उसकी यदि आप ग्रंथों से तुलना करें तो हूबहू मिलता हुआ अनुभव रहेगा। यह उसी प्रकार की चीज है कि यहाँ से सड़क के रास्ते किसी को पटना जाना हो, तो रास्ते में जितने भी मोड़ हैं, चौक हैं, वे तो हर व्यक्ति को मिलेंगे ही। भले ही आप अलग-अलग समय में जाइए। आपके अलग समय में जाने के कारण सड़क तो बदलती नहीं है। आत्म-साक्षात्कार के मार्ग में भी परिवर्तन नहीं होता, अनुभूतियाँ वही हैं। केवल देश, काल, परिस्थिति और व्यक्ति बदल जाते हैं।

सिद्धासन को इस नाम से क्यों पुकारते हैं? क्या गृहस्थों को इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए?

सिद्धासन को यह नाम एक विशेष प्रयोजन से दिया गया है। किसी आसन में पूर्णता प्राप्त करने के पश्चात् वह आसन सिद्ध कहलाता है, लेकिन यहाँ पर सिद्धासन का दूसरा अर्थ है। जब हम किसी आसन का अभ्यास करके उसमें पूर्णता हासिल करते हैं, तब उस शारीरिक अवस्था पर हमारा नियंत्रण रहता है। लेकिन ध्यान के कुछ

अभ्यास या आसन होते हैं जिनका सम्बन्ध शरीर से नहीं रहता, जिनका प्रयोजन शारीरिक नहीं होता। सूर्य नमस्कार का सम्बन्ध शरीर से है। मुख्य रूप से शरीर की विभिन्न प्रणालियों से है और सूक्ष्म रूप में इसका थोड़ा-सा सम्बन्ध हमारे सूक्ष्म और कारण शरीरों से भी है। अन्य समूहों के आसनों का सम्बन्ध मुख्य रूप से शरीर से है। लेकिन ध्यान के जो आसन होते हैं, जैसे सिद्धासन, पद्मासन, इत्यादि, इनका सम्बन्ध मुख्य रूप से हमारे शरीर के सूक्ष्म केन्द्रों के साथ है।

प्रजनन केन्द्र की कुछ ऐसी नसें हैं जो सिद्धासन में पड़ते दबाव से प्रभावित होती हैं। कुछ ऐसी भी नसें हैं जो पद्मासन के अभ्यास के समय जाग्रत होती हैं और बाकी समय शिथिल रहती हैं। ध्यान के अभ्यासों में, जिनका सम्बन्ध सीधे चक्रों, ग्रंथियों एवं सूक्ष्म नाड़ियों से है, सिद्धासन को मुख्य माना गया है, क्योंकि यह मूलाधार चक्र को जाग्रत करता है तथा तीनों मुख्य नाड़ियों–इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना में प्राण का संचार करता है। यही कारण है कि इसे शुरू से ही सिद्ध आसन नाम दिया गया है।

ऐसा कहीं नहीं कहा गया है कि गृहस्थों को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए। जो अपने जीवन में आत्मिक विकास की इच्छा रखते हैं, जीवन को साधनात्मक बनाना चाहते है, उन्हें इसका अभ्यास करना चाहिए। सिद्धासन का ही नहीं, सभी आसनों का अभ्यास करना चाहिए, क्योंकि योग के जितने अभ्यास हैं वे सब एक-दूसरे के पूरक हैं। एक अभ्यास से ही तृप्ति या प्राप्ति नहीं होती। दूसरे अभ्यासों के बिना अगर आप सिद्धासन का अभ्यास करते हैं तो कुछ नहीं होने वाला है। अगर कमरा साफ करना है तो पहले कमरे के अन्दर प्रवेश करना पड़ता है, दरवाजा खोलना पड़ता है, खिड़की खोलनी पड़ती है, झाड़ू हाथ में उठाना पड़ता है, जाले निकालने पड़ते हैं, धूल झाड़नी पड़ती है। अनेक कार्य करने पड़ते हैं न? केवल हाथ में चाबी लेकर हम सोचने लगें कि कमरा साफ हो जाए, उससे कुछ होने वाला नहीं है। इसी प्रकार अगर आप मात्र सिद्धासन करके मूलाधार चक्र को जगाना चाहेंगे या कुण्डलिनी को जगाना चाहेंगे तो दस जनम तक कर लीजिए, कुछ होने वाला नहीं है।

सभी योगाभ्यास एक-दूसरे के सम्पूरक होते हैं। आपने अनुभव किया होगा, सूर्य नमस्कार करते हैं तो उसके साथ और कितने अभ्यास जुड़े रहते हैं–श्वास पर ध्यान होता है, मंत्रों का उच्चारण होता है, चक्रों पर ध्यान होता है, शरीर की स्थिति का ख्याल करते हैं, अनेक प्रकार के मानसिक और शारीरिक सजगता के केन्द्रों के प्रति हम जाग्रत हो जाते हैं। तभी उसका पूरा लाभ उठा पाते हैं। अगर ऐसा नहीं होता तो सूर्य नमस्कार मात्र एक व्यायाम बनकर रह जाता है, योगाभ्यास नहीं रहता। सिद्धासन या अन्य किसी आसन का अभ्यास आप कर सकते हैं, कोई प्रतिबन्ध नहीं है, केवल इतना प्रतिबन्ध है कि आपको एक योग शिक्षक से इसकी शिक्षा लेनी चाहिए। जैसे आप दवाई लेने जाते हैं तो चाहते हैं कि हमें एक अच्छे डॉक्टर की दवाई मिले, नीम-हकीम की दवाई कोई नहीं चाहता, वैसा ही योग के साथ भी होना चाहिए।

चक्रवर्ती सम्राट्

सत्यम् का साम्राज्य निराला
प्रहरी जिसके सत्यव्रत हैं
शिवानन्द का कोषागार
धर्मशक्ति का पुष्प निरंजन
जन-जन करती जय-जयकार!

घर-घर जलती योग की ज्योति
यज्ञों का आयोजन होता
निर्बल की सुनते पुकार
खुशियों का नहीं पारावार!

बच्चों की किलकारी गूँजे
सेना उनकी बाल बृन्द है
अनुशासन का थामे ढाल
ममता की शीतल छाया है
सत्संगी का निर्मल प्यार!

जीवन का उद्देश्य बताते
संन्यास पीठ की अविरल धार
ऐसे सद्गुरु की हम संतान
उनसे ही हम सबकी शान
हे सत्यम्! तुम गुरु महान्
दुनिया करती जिन्हें प्रणाम
चक्रवर्ती सम्राट् हमारे महान्!

—संन्यासी योगप्रिया, पटना

योगा एवं *योगविद्या* प्रसाद

सन् 2013 में बिहार योग विद्यालय ने अपनी स्वर्ण जयन्ती मनाई, जिसका समापन अक्टूबर 2013 में आयोजित विश्व योग सम्मेलन के साथ हुआ। इस ऐतिहासिक सम्मेलन में यह स्पष्ट हो गया कि योग को नगर-नगर डगर-डगर पहुँचाने का संकल्प सफलतापूर्वक सम्पन्न कर लिया गया है। 50 वर्षों की अवधि में दुनियाभर के योग साधकों और योग प्रेमियों की मदद से प्राप्त यह उपलब्धि यौगिक पुनर्जागृति की द्योतक है।

विश्व योग सम्मेलन के पश्चात् बिहार योग विद्यालय के दूसरे अध्याय का श्रीगणेश हो गया है, जिसका लक्ष्य भावी पीढ़ियों के कल्याण के लिए स्वामी शिवानन्द जी और स्वामी सत्यानन्द जी की परम्परा से प्राप्त योग विद्या का संरक्षण और संवर्धन है।

इस दूसरे अध्याय में बिहार योग विद्यालय *योगा* और *योगविद्या* पत्रिकाओं को गुरु परम्परा के आशीर्वाद सहित प्रसाद स्वरूप प्रस्तुत कर रहा है। वर्तमान डिजिटल युग में योग विद्या के प्रभावी प्रचार-प्रसार हेतु *योगा* और *योगविद्या* पत्रिकाएँ अब पी.डी.एफ. फॉरमैट में डाउनलोड हेतु उपलब्ध हैं, तथा साथ ही IOS एवं Android प्लैटफार्मों पर नि:शुल्क एप्प के रूप में उपलब्ध हैं।

***योगा* पत्रिका डाउनलोड करने के लिए–**
http://www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/

***योगविद्या* पत्रिका डाउनलोड करने के लिए–**
http://www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

IOS प्लैटफार्म पर *योगा* एवं *योगविद्या*, दोनों पत्रिकाओं को पढ़ने के लिए इस एप्प को डाउनलोड करें–https://itunes.apple.com/us/developer/bihar-school-of-yoga/id1134424786

Android प्लैटफार्म पर *योगा* पत्रिका पढ़ने के लिए यह एप्प डाउनलोड करें–https://play.google.com/store/apps/details?id=net.biharyoga.yogapeeth.app.emag.android.yoga

Android प्लैटफार्म पर *योगविद्या* पत्रिका पढ़ने के लिए यह एप्प डाउनलोड करें–https://play.google.com/store/apps/details?id=net.biharyoga.yogapeeth.app.emag.android.yogavidya

***योगा* पत्रिका की पुरानी प्रतियों के संग्रह** को पढ़ने तथा उनमें किसी विषय को खोजने हेतु देखें–http://www.yogamag.net/archives.shtml

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. MGR-01/2017
  Office of posting: Ganga Darshan TSO
  Date of posting: 1st–7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2019

फरवरी 4-मई 26	चातुर्मासिक योग अध्ययन (हिन्दी)
फरवरी 6-8	श्री यंत्र आराधना
फरवरी 9	बसंत पंचमी महोत्सव, बिहार योग विद्यालय का स्थापना दिवस
फरवरी 14	बाल योग दिवस
फरवरी 18-24	योग कैप्सूल-श्वास सम्बन्धी (हिन्दी)
फरवरी 18-24	योग कैप्सूल-गठिया सम्बन्धी (हिन्दी)
मार्च 1-30	एकमासिक योग प्रशिक्षण (हिन्दी)
मार्च 9-17	पूर्ण स्वास्थ्य कैप्सूल (हिन्दी)
मार्च 11-17	योग कैप्सूल-पाचन सम्बन्धी (हिन्दी)
अप्रैल 2-6	योग जीवनशैली कैप्सूल (हिन्दी/अंग्रेजी)
अप्रैल 22-28	हठ योग यात्रा 1 एवं 2
मई 13-19	हठ योग यात्रा 3 एवं 4
जून 2-6	योग जीवनशैली कैप्सूल (हिन्दी/अंग्रेजी)
अगस्त 16-22	राज योग यात्रा 1 एवं 2
अगस्त 23-29	राज योग यात्रा 3 एवं 4
अक्टूबर 1-30	बिहार योग शिक्षकों के लिए प्रगतिशील प्रशिक्षण 1, 2 (अंग्रेजी)
अक्टूबर 1-जनवरी 25	चातुर्मासिक योग अध्ययन (अंग्रेजी)
नवम्बर 4-10	क्रिया योग यात्रा 1 एवं 2
नवम्बर 11-17	क्रिया योग यात्रा 3
दिसम्बर 18-22	योग चक्र श्रृंखला (अंग्रेजी)
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 4, 5 एवं 6 तारीख	गुरु भक्ति योग
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें-

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
फोन : 06344-222430, 06344-228603 फैक्स : 06344-220169
वेबसाइट : www.biharyoga.net

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।